॥ ब्राह्मिक याथार्थ्य और ब्रह्मवाद की नानावादानुरोधिता ॥

(लघुग्रन्थसंग्रह-२)

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : गोस्वामी श्याम मनोहर,
६३, स्वस्तिक सोसायटी,
जुहु चौथा रस्ता,
विलेपार्ले - मुंबई - ४०० ०५६.

सहयोग प्रकाशन : श्रीमती मीताबेन, घाटकोपर
श्रीमती हंसाबेन गांधी, मुम्बई
श्रीमती स्वाति समीर वोरा, मुम्बई

संकलनकार : गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण : वि.सं.२०७३, शरत्पूर्णिमा.

प्रति : ५००

निःशुल्कवितरणार्थ

मुद्रक : पूर्वी प्रेस प्रा.ली
राजकोट

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

प्राक्कथन

एकस्याद्वितीयस्य बहुभवनप्रकारनिरूपणम्

प्रस्तुत ग्रन्थमें एकमेवाद्वितीय ब्राह्मिक याथार्थ्य कैसे बहुविधभावापन्न होता है, यह दरसाया गया है. ब्रह्मके वेदादि शास्त्रीय चिन्तनके आधारपर जो ब्रह्मवाद स्थापित होता है उसमें ब्रह्मको अचिन्त्य भी स्वीकारा गया है, स्वरूपतः भी और सामर्थ्यके दृष्टिसे भी. अतः अचिन्त्यके चिन्तनकी प्रक्रियामें चिन्तनकी परिछिन्नता और चिन्त्यमान तत्त्वकी चिन्तनमें परिछिन्न न हो पानेकी अद्भुतताका वर्णन इस ग्रन्थकी मौलिक विशेषता है. वैसे तो ब्रह्मको विरुद्धधर्माश्रय श्रुतिसिद्धान्तके आधारपर स्वीकारा गया है और विरुद्धधर्माश्रयता स्वारुढ शाखाका उच्छेद तो नहीं कर सकती. अतः केवल विरुद्धधर्माश्रयताके अन्तर्गत नहीं प्रत्युत सर्वतादात्म्यवाद और तादात्म्यके भेदसहिष्णु-अभेदके स्वभावका अवलम्बन करके उसके तीन आयाम : १.अभेदप्राधान्य २.भेदाभेदप्राधान्य ३.भेदप्राधान्य की दृष्टिको कैसे समायोजित करना उसका इदम्प्रथम प्रयास परिलक्षित होता है. इसे ग्रन्थकारने हिन्दीभूमिका विचारतालिका और संस्कृतश्लोकोंमें निबद्ध किया है. यह ब्रह्म जैसे सर्वसमावेशी होता है वैसे ही ब्रह्मवाद भी सर्वसमावेशी कैसे होता है उसका यहां निदर्शन है.

अविद्यापञ्चपर्वाध्यासदोषोपशमप्रक्रिया

इस गन्थमें अविद्याके पांच पर्वोंसे पंचविध अध्यास उनकी

कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग साधकता और/अथवा बाधकता की संक्षेपमें विवेचना की गयी है. एतदर्थ शास्त्रार्थप्रकरण सिद्धान्तरहस्योक्त पंचविध दोषोंके निरूपणोंकी एकवाक्यता प्रतिपादित की है. अध्यास भ्रमरूप होनेसे ज्ञानमार्गमें बाधक होते हैं परन्तु "कण्टकेनैव कण्टकम्"न्यायसे अध्यासनिवृत्तिके उपायतया वे उपादेय भी बनते हैं. कर्ममार्गमें तो कर्माधिकारिता बिना अध्यासोंके सम्भव नहीं परन्तु निष्काम कर्मानुष्ठानसे आत्मसुखरूप फलप्राप्तिके समय ये अध्यास भासित नहीं होते. भक्तिमार्गमें तो समर्पणप्रक्रियाद्वारा भक्तिके साधक बन जाते हैं. फलरूप समर्पणभावरहित भक्तिमें बाधक भी बन सकते हैं.

श्रुतिगीतासूक्ष्मटीकाकारिकातात्पर्यनिरूपणम्

वेदस्तुतिपर श्रीआचार्यचरणने सूक्ष्मटीका लिखी है जिसे सरलतासे समझनेके लिये ग्रन्थकारने विवक्षित श्रुतियोंका संग्रह कारिका द्वारा इस ग्रन्थमें किया है. ग्रंथके मंगलाचरणमें एकमेवाद्वितीय, अपरिछिन्न और सारें नाम - रूप - कर्म जहां एकनीड हो रहे हों ऐसे कृष्णात्मक ब्रह्मके आश्रयका निरूपण किया है. यह ब्रह्म विधान, अभिधान और विकल्प करके अपोहन द्वारा शब्दभेदका आश्रय करके भिन्न और अभिन्न भी है.

वेदस्तुतिके इस अध्यायान्तर्गत पूर्वपक्ष, सिद्धान्तोंकी समासोक्ति और फल का निरूपण है. पूर्वपक्षमें परिक्षितराजाका प्रश्न है कि सत् ओर असत् से पर ऐसे साक्षाद् निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन गुणवृत्तिवाली श्रुतियां कैसे कर सकती है? इस प्रश्नके प्रत्युत्तरमें सिद्धान्तोंकी समासोक्ति द्वारा वाक्पति श्रीमहाप्रभुजीने सखण्डाखण्डद्वैतकी

प्रक्रियासे ब्रह्मका "**अनन्तगुणपूर्णो हि...**" कारिकासे पूरा table turn कर दिया! फलके निरूपणमें श्रीमहाप्रभुजी स्वयं श्रीहरिका निरूपण करते है. जिसका सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थमें भी "**अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम्**" द्वारा निरूपण है. यहां एक अतीव महत्त्वपूर्ण बात ग्रन्थकार समझा रहे है कि अनन्तगुणपूर्णतासे सगुणताका deduction है नहिकि सगुणताकी inductive leap से अनन्तगुणपूर्णता!

अव्यवहार्य ब्रह्मके व्यवहार्य होनेके लिये सृष्टिकी अनेक प्रक्रियाका यहां निरूपण है. प्रथमतया सच्चिदानंद ब्रह्ममें धर्म विभाजनसे नाम - रूप - क्रियाका interaction होता है. सांख्यशास्त्र प्रक्रियाके अनुसार अव्यक्त प्रकृतिमें पुरुषके सम्बन्धसे प्रकृतिमें होते विकारसे महद्, अहंकार, तन्मात्रा आदि तत्त्वोंकी उत्पत्तिका निरूपण हैं. जिसमें मात्रायें विषयों और इन्द्रियों के बीचमें mediate करती होनेसे रूप और नाम का interaction शक्य होता है. शब्दतन्मात्राको जब सुनते है तब बुद्धिमें नामका समुद्भव होता है और वेदादि शब्दों भी बुद्धिमें विशेषरूपसे धारण हो सकते है. ऐसे त्रिगुणवृत्ति भी निगुर्णमें विचरण कर सकती है! ऐसी ही सृष्टि प्रक्रियाका श्रीभागवतमें इस अध्यायान्तर्गत आती जनलोककी कथासे उपपत्ति दी है. बृहदारण्यक उपनिषद्में इस सृष्टिकी प्रक्रिया मन और वाणी के मैथुन से दरसायी गयी है जिससे रूप और नाम का interaction बताया गया है. ऐसे अनेकविध प्रकारसे सृष्टिमें नाम - रूप का interaction वाच्य - वाचकतया बताया गया है. सिद्धान्तमुक्तावलीमें इसलिये श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते है "**मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं.. भवतीति श्रुतेर्मतम्**"

पश्चात् श्रीभागवतमें आते इस अध्यायके अन्तर्गत अंतिम श्लोककी "**योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधनो..**" संगति ब्रह्मवादकी प्रक्रियासे समझाई है जिसमें ग्रन्थकारने निम्नलिखित ब्रह्मवादके ingredients बतायें हैं :

क. योऽस्योत्प्रेक्षकः - दृश्यमानस्य जगतः आद्यो दृष्टा सएव हि

ख. आदिमध्यनिधनो - जगतश्चादिमध्यान्तरूपं चापि तदेव हि

ग. योऽव्यक्तजीवेश्वरो - जडजीवेशरूपत्वं त्रैविध्यं चैकब्रह्मणः

घ. यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य - प्रविश्यान्तर्नियमनं स्वसृष्टानां तथा मतम्

ङ. ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः - बाह्यं नियामकं रूपं शाब्दं वेदादिकं मतम्

च. यं सम्पद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा - अंशिन्यंशस्थितिः तत्र निजांशानां द्विधा मता

छ. तं कैवल्यनिरस्तयोनिम् - उत्पत्तौ पालने चैवं विश्वसंहरणे तथा

ज. अभयं ध्यायेद् अजस्रं हरिम् - भयाभावैकहेतुं तं नतें तं चाभयं क्वचित्

महर्षिव्यास समग्र वेदको स्तुत्यात्मक मानते है जबकि शौनकऋषि वेदके मन्त्रके बहुतसारें प्रकार बताते है. जिसमेसे एक प्रकार स्तुति है. तो क्या वेद दो प्रकारके हैं? इसके समाधानमें ग्रन्थकार यह बता रहे है कि महर्षि व्यास सृष्टिपूर्व वेदका प्रतिपादन करते है जिसमे सब श्रुतियां ब्रह्मकी स्तुति ही कर रही है और शौनकऋषि सृष्ट्युत्तर वेदका प्रतिपादन करते हैं जिसमें वेदके मन्त्रके बहुत सारें प्रकार बताये गये है. ऐसे समग्र वेद तो एक ही है परन्तु उसका निरूपण स्वरूपसे और लीलासे किस प्रकार भिन्न हुआ है वह समझना जरुरी है.

ग्रन्थोपसंहारमें उपक्रममें पूर्वपक्षका जो समाधान दिया था उसकी एकवाक्यताका निरूपण किया गया है. ब्रह्म तो निर्गुण और गुणातीत है. सत्त्व रज और तमो गुण ब्रह्ममेंसे उत्पन्न होते हैं जिससे ये गुण ब्रह्मात्मक हैं नहिकि ब्रह्म त्रिगुणात्मक है. इन गुणोंमें ब्रह्म केद नहीं हो सकता है. गुणोंमें रही गुणवृत्ति उस निर्गुण ब्रह्मकी लीला है! इसलिये सगुण श्रुतियां अनन्तगुणपूर्णवाले ब्रह्मका अनेकधा प्रतिपादन कर सकती हैं.

भक्तिसर्गभक्तिमार्गाविरोधनिरूपणम्

तृतीयस्कंधसुबोधिनीमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं ''**कर्मादिमार्गाः वेदोक्ताः फलतस्ते यदि स्थिराः. सर्गोऽत्र नैव जायेत ततस्तन्नाश उच्यते. कामेन कर्मनाशः स्यात् क्रोधेन ज्ञाननाशनम्. लोभेनापि च भक्तिर्हि धर्मिज्ञानीश्वरैः कृता**''. वेदमें कहे कर्म ज्ञान भक्ति मार्गोंका सर्गोत्पतिहेतु क्रमशः काम क्रोध लोभ द्वारा नाश वर्णित है. साथ ही शास्त्रोक्त प्रक्रियाद्वारा पञ्चकोशकी शुद्धि और फलतः आनन्दानुभूति रूप भक्तिकी प्राप्ति बताई है. इसीकी व्याख्याके रूपमें, वेद और भागवत आदि के सांगोपांग वचनोंद्वारा यह ग्रंथ संकलित हुआ है.

पुरुषोत्तमजोशीवार्तास्थ वचनामृतव्याख्या

ग्रन्थकारने किशनगढ़में वर्ष २०१५में वल्लभवचनामृतके प्रवचन अन्तर्गत इस वार्तापर व्याख्या लिखी है. इस वार्ताके प्रारंभमें श्रीपुरुषोत्तमजोशी प्रश्न कर रहे हैं कि ''**कर्ममार्ग बड़ो के ज्ञानमार्ग बड़ो?**'' तब श्रीआचार्यचरणने प्रत्युत्तरमें कहा कि ''**जाके मनमें दृढ़ जो मार्ग आवे, जामें जाको विश्वास होय वाके भाये तो वह मार्ग बड़ो और बड़ो तो भक्तिमार्ग है जामें जीव कृतार्थ होई. और ज्ञानमारग**

कर्ममारग सों कृतार्थता कठितासो होई. सो काहुसों निर्वाह होय नाहीं. काहेतें? कष्ट साध्य हैं, सो या कालमें शरीरको कष्ट कर्यो न जाइ, जो कोऊ शरीरको कष्ट सहे तो मन ठिकाने न रहें. तातें भक्तिमारगी जीव कृतार्थ होइ. और आश्रय नाहीं.'' इसलिये इस ग्रन्थमें ग्रन्थकार कर्ममार्ग, ज्ञानमार्गकी कठिनता और उत्कृष्ट भक्तिमार्गकी सरलता का वर्णन करते हैं.

शास्त्रमें दरसायी क्रियासे जीवका जब भगवान्में योग होता है तो उसे कर्मयोग कहते हैं. इस कालमें अल्पज्ञानसे, अल्पकामसे और अल्पप्रयत्नों द्वारा जो कर्म करनेमें आते हैं उससे कर्मानुष्ठान सफल नहीं हो पाता है. इस दुःसाध्य कर्मसे क्लेश उत्पन्न होता है और कर्मनिष्ठा निभ नहीं पाती है. जिससे चित्त प्रसन्न नहीं रह पाता है.

आत्मामें ब्रह्मत्वप्रकारक और ब्रह्ममें आत्मत्व प्रकारक विज्ञान ऐसे विभिन्न विधेय और उद्देश्य भावके वश ज्ञानके दो प्रकार होते हैं. चिदंशमें आनन्दके तिरोभावसे चेतनामें मन, बुद्धि इत्यादि उपाधिसे उत्पन्न होता ज्ञान कृत्रिम होता है. इसमें ब्रह्मात्माका ज्ञान नहीं होता है. ज्ञानयोगके साधन करनेपर भी आनन्दधर्मी न होनेके कारण और ऐश्वर्यादिके गुणोंके अभावसे ज्ञानयोग कठिन है. इसलिये ज्ञानयोगमें निष्ठा नहीं निभ पाती है और विफल बन जाता है.

भक्तियोगमें आराध्यकी परोक्षतामें ब्रह्मबुद्धि और अपरोक्षतामें स्वयंके आराध्यमें प्रिय सेव्यता बुद्धि होती है. आराध्य ब्राह्मिक

भगवद्रूप होता है, आराधक भी ब्रह्मांश ही है, भक्तिरूप आराधना भी ब्राह्मिक धर्म है और भजननैरन्तर्य फल भी ब्राह्मिकी शाश्वतता है. जीवमें आनन्दंशके तिरोधानसे षड्गुण तिरोहित होते हैं. भक्तिसाधनासे धर्मिरूप आनन्दके आविर्भावसे ब्राह्मिक रति प्राप्त होनेपर भक्तियोगकी साधना क्लेशयुक्त नहीं रह जाती है. भक्तिके रतिरूप होनेके कारण संयोग और विप्रयोग ऐसे दलद्वय होते हैं. इसलिये भगवान्की ऐसी द्विदलात्मिका लीलासे फलावस्था अथवा साधनावस्था में कठिनता प्रकट नहीं होती है. ऐसे भी जीव भगवदंश है और अंश स्वाभाविकतया अंशीका सेवन करता ही है. अत: भक्तियोगके साधनामें कोइ क्लेश नहीं है. अन्तमें श्रीआचार्यचरण संन्यासनिर्णय ग्रन्थमें वर्णित भक्तिमार्गकी सरलता और उत्कृष्टता **"हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं.."** श्लोकद्वारा करते हैं.

"कथा इमास्ते" कारिकोपरि विवरणम्

समग्र सृष्टि ब्रह्मका स्वयंमेसे, स्वयंद्वारा और स्वयंका आत्मरमण है. श्रीभागवतमें जिसका "रेमे निरस्तरति..." द्वारा निरूपण किया है. ब्रह्म स्वरूपकी दृष्टिसे 'निरस्तरति' है (=समोहं सर्वभूतेषु) और लीलाकी दृष्टिसे 'रेमे' (=ये भजन्ति तु मां भक्त्या) है. ब्रह्म समग्र सृष्टिका नियमन इस प्रकार करता है. इस रमणका निरूपण उपनिषद्में उत्पत्ति, स्थिति और लय के द्वारा किया गया है और श्रीभागवतमें इसका ही निरूपण सर्गादि दशविध लीलाके निरूपणद्वारा किया गया है. यहां श्रीमहाप्रभुजीके मतानुसार मुक्ति और आश्रय भी लीला ही हैं! ब्रह्मका जो आश्रयभूत स्वरूप है वह भी उसकी एक विशिष्ट लीला ही है. सर्गादि नवविधलीला आश्रयके लिये है और आश्रय कृष्णके लिये है.

इन द्वादशस्कन्धोंमें जो महान राजाओंकी कथायें आती हैं उनका मूल तात्पर्य भगवद्विज्ञान (भगवदासक्ति) और अन्य विषयोंमें वैराग्य (प्रपंचविस्मृति) ही है. इस आलेखमें ग्रन्थकार दशम और द्वादश स्कन्धोंका विषय कैसे एक है और आश्रयलीलामें निगूढतया छिपा हुआ सुमधुर भक्तिके (निरोधके) स्पन्दनका दर्शन करवाते हैं! जैसेकि आश्रयलीला और निरोधलीला की theme एक ही है stage भी एक ही है किन्तु इस लीलामें प्रकट हुते episodes, characters और dialogues बदल गये है. यहां विज्ञानका अर्थ विशिष्ट ज्ञान (कार्यमें कारणका अन्वय) तक मर्यादित न होकर ऐसा विज्ञान है कि जहां सबकुछ ब्रह्म होते हुए भी कृष्ण ही केवल भजनीय है? न कुछ हेय, न कुछ श्रेय परन्तु भजनीयको अलगसे तराशनेमें भक्तिका जो role है उसका निरूपण किया गया है. ऐसी भक्तिके स्वरूप और फल की सिद्धिके लिये भगवदाश्रयका निरूपण किया गया है.

उपनिषदुक्तरसस्य नाट्यशास्त्रोक्तरसेन ऐक्यमनैक्यम् वेति रसमीमांसा

उपनिषद् और नाट्यशास्त्र में वर्णित रसकी इस मीमांसामें उनका ऐक्य है या तारतम्य यही इस ग्रंथका मूलविषय है.

उपनिषद्में ब्रह्मको "**रसो वै सः**" कहा है. और इसी औपनिषद् ब्रह्मके सत्यसंकल्पसे प्रकटी लीला भागवतमें बाह्य और आभ्यन्तर, ऐसे दो तरहसे वर्णित है. प्रस्तुत आलेखमें विषयवाक्यके रूपमें इन्हीं दो वचनोंको उद्धृत किया है. तृतीयस्कंधमें जहां उत्पति, स्थिति और लय रूपी बाह्य सर्गादि सृष्टिलीलाको रासलीलाके रूपमें कहा गया है और भक्तभावात्मक सृष्टिलीलाको आन्तर

रासलीलाके रूपमें कहा गया है.

उपक्रममें भागवतपुराणके दशमस्कंधके ''**बर्हापीडं नटवरवपुः..**'', ''**मल्लानाम् अशनि..**'' इत्यादि स्थलोंमें 'नटवरवपु' कृष्णकी रसात्मकलीला वर्णित है. इसी तरह शिवपुराणमें भी शिवजीका 'नटराज'के रूपमें उल्लेख मिलता है.

भागवतमें कृष्णको ब्रह्म-परमात्मा-भगवानके रूपमें वर्णित किया गया है. ''रसौ वै सः''ब्रह्मकी अद्वैतरूपता और देश-काल-स्वरूपमें अपरिच्छिन्नता और रसशास्त्रोक्त ''**विभाव, अनुभाव और संचारीभाव से निष्पन्न होते स्थायीभावात्मक रस**''की भेदरूपता और परिच्छिन्नता वर्णित की गयी है. इन दोनोंको जब 'रस' कहा जाता है तब उनके भिन्न या अभिन्न होनेकी मीमांसा की गयी है.

'एकमेवाद्वितीय' अपरिच्छिन्न आनन्द रूपी ब्रह्मकी रासलीलामें दिखलाई देते भेद उसीकी आत्मरतिका ही विस्तार है. जो बाह्य सृष्टिलीलाके रूपमें और आभ्यन्तर भक्तभावात्मक लीलाके रूपमें भी विस्फुरित होती है.

कृष्णभक्तेः रसात्मकत्वनिरूपम्

इस ग्रंथमें श्रीमदाचार्यसम्मत पंचमपुरुषार्थरूपा रसरूपिणी पुष्टिभक्तिका लक्षण देकर विचार किया गया है. साथ ही अनुग्रह और भक्तिके सम्बन्धको भी दर्शाया गया है. वरणात्मक पुष्टिको बीजभाव, प्रेमको अंकुर, आसक्तिको तरु और व्यसनको फलके रूपमें दरसाया है. इसी बीजभावके सिंचनार्थ सत्संग शरणागति

समर्पण नवधाभक्ति आदि उपायोंका निरूपण भी किया गया है. साथ साथ इस रसके आलम्बनविभावादिकी चर्चा की गई है.

पूर्णानन्दपूर्णकामनामनिरूपणम्

इन नामोंमे रही गहराईको समझानेके लिये ग्रन्थकारने व्याख्याकी शुरूआतमें ऐसी शंका की है कि इस नाममें पूर्ण विशेषण अनावश्यक है? इसके समाधानमें उत्पत्ति और उपपत्ति पक्षसे आनन्दके प्राचुर्यका प्रभेद समझाया है. उत्पत्तिपक्षसे **"सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म. यो वेद निहितं गुहायां.."** श्रुति द्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिकी प्रक्रियामें सत् और चिद् अंश से समुद्भूत पंचकोशमें (अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय और आनन्दमय) आनन्द छिपा हुआ रहता है. यह मन, बुद्धि इत्यादिसे उत्थित अल्प आनन्द सुखदुःखात्मक होता है. इससे विपरीत उपपत्तिपक्षसे सच्चिदानन्दका जो स्वरूपभूत आनन्द है उसका शिर प्रियता है, मोद दक्षिणपक्ष है जो उद्दीपनभावरूप है, प्रमोद उत्तरपक्ष है जो आलम्बनभावरूप है और पुच्छ बह्म है. यह पुरुषोत्तमका आनन्द है जो स्वमहिम्नरूप अक्षरब्रह्ममें नित्य लहराता है! यह आनन्द पूर्णानन्द है जो रस प्रकट करता है.

इस प्रकारसे पूर्णाकाममें रहा हुआ पूर्ण भी किस प्रकारका है उसका यहां विमर्श किया गया है. जिसमें निम्नलिखित सम्भावना हो सकती है:

निरानन्द + सकाम = जीवचेतना (दुःखात्मक)
निरानन्द + निष्काम = जगत् + सायुज्यजीव
सानन्द + निष्काम = अक्षरचेतना
सानन्द + सकाम = पुरुषोत्तम

इसमें सानन्द सकामका ही यहां पूर्णवर्णन किया गया है. यह पूर्णकामसे प्रकट होती लीलार्थ सृष्टि भी रसात्मिका होती है!

यहां जैसे पूर्णानन्द पूर्णकाम नामोंमें श्रुतियोंद्वारा ब्रह्मके दरसाये गये रूप हैं. वैसे "**आचार्यदेवो भव**" विधानसे इन नामोंका श्रीआचार्यचरणपर अतिदेश भी शक्य है क्योंकी श्रीआचार्यचरण प्रभुके मुखारविन्द स्वरूप हैं और "**वस्तुतः कृष्णएव**" द्वारा अपने आचार्यचरण भी ऐसे पूर्णानन्द पूर्णकाम हैं! सर्वोत्तमस्तोत्रके नामोंके पीछे तत्त्वोपदेश और कर्तव्योपदेश छिपे हुअे है. तत्त्वोपदेशका निरूपण उपरोक्त श्रुतियोंद्वारा निरूपित हुआ है. इन नामोंमें कर्तव्योपदेश चतुःश्लोकी ग्रन्थमें "**यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि..**" श्लोकद्वारा निरूपित हुआ है.

वाक्पतिविबुधेश्वरनामनिरूपणम्

श्रीवाक्पति और उनकी वाणीके अर्थरूप श्रीकृष्ण को प्रणाम करके और श्रीमहाप्रभुजीके नामोंमे छिपे हुअे आनन्दको प्राप्त करनेके लिये ग्रन्थकार इन नामोंकी व्याख्या करते हैं. उपक्रममें ग्रन्थकारने ब्रह्मके स्वरूप और कार्य लक्षण दरसाये हैं. ब्रह्मका स्वरूपलक्षण "**सत्यं ज्ञानमनन्तञ्च**" श्रुति द्वारा वर्णित है. स्वरूपतः ब्रह्म देश - काल - स्वरूपसे अपरिछिन्न है. ब्रह्मका कार्यलक्षण "**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**" श्रुति द्वारा वर्णित है. लीलातः ब्रह्म अनेक नाम - रूप - कर्म धारण करता हैं. ऐसे सारें रूपोंके ज्ञाता (विबुध) और सारें नामोंके वक्ता (वाक्पति) ब्रह्म स्वयं ही है. यह लीलात्मिका सृष्टि ब्रह्मके स्वभावसे नहीं परन्तु सत्यसंकल्पसे हुई है जिसका निरूपण "**तपस्तप्त्वाऽसृजत् सर्वम् इदं**" श्रुतिमें किया

गया है. इसलिये ब्रह्म वाक्पति ओर विबुधेश्वर हैं.

शास्त्रके आचयन करनेसे और जैसे अंशांशीमें तादात्म्य अवगत होता है वैसे स्वयंश्री प्रभुके मुखारविन्दरूप होनेके कारण इस नामार्थका श्रीमहाप्रभुजीपर भी अतिदेश किया जा सकता है. अवाच्य जो पूर्णानन्द है उसके पूर्णकामरूपेण सृष्टि उत्पन्न करनेके कारण वाक्पतिता और विबुधेश्वरता आती हैं. इस प्रकार नामोंकी संगति बतायी गयी है. ब्रह्मके बहुभवनसामर्थ्यके कारण यह सृष्टि प्रकट होती है इसलिये यह सृष्टि मायिक नहीं परन्तु ब्रह्मात्मक है.

इन नामोंमें प्रकट होती ब्रह्मात्मिका को उभारनेके लिये ग्रन्थकारने निम्नलिखित शंका - समाधान किये हैं.

शंका : शाब्दज्ञानसे इतर अर्थ प्रकट होता होनेसे वाणी और नाम आविद्यक हैं जिससे उसका ब्रह्मतादात्म्य भी मिथ्या है और ब्रह्म भी मिथ्या है. वस्तुतः निर्विकल्पकज्ञान ही प्रमाण है.

समाधान : शब्दका प्रयोग न करनेवालें ऐसे जंगलमें रहते पशुपक्षियां खाद्याखाद्य विकल्पोंमें खाद्यबुद्धि ही प्रकट होती है, इन्द्रियों द्वारा गृहीत होते रूप, गन्ध इत्यादिमें भेद करनेसे ऐसी मति होती है. जैसे बुद्धके संघमें विहार करनेवालेंको अनृत नहीं कहा जा सकता तो फिर चक्षुसे प्रत्यक्षानुभूतिसे प्रकट होते शब्द कैसे भ्रान्तिमूलक माने जा सकते है ?

शंका : वस्तुकी दृष्टिसे संकल्प और विकल्प वस्तुसे उद्भूत नहीं होते हैं किन्तु शाब्दज्ञानमें उनका उपयोग होता है. इसलिये वाणी

मिथ्या है.

समाधान : प्रतीत्य समुत्पादवादिओंकी ऐसी धारणा है. उनके मतमें भी 'धम्मं शरणं' 'बुद्धं शरणं' वाणीके प्रमाणसे ही कहा जाता है! अगर वाणीका प्रमाण नहीं रहा तो शरणका कैसे रहेगा! इसलिये वाणीसे ही वस्तुका निरूपण हो सकता है.

शंका : श्रुतिमें सर्ववस्तुका सामान्य और सारूप्य से वर्णन हुआ हैं. निर्विकल्प प्रमाणका अर्थ भी सारूप्यहेतुवाला है. तो फिर यहां सृष्टिमें जो विलक्षणता दरसायी गयी है उसपे आपत्ति आयेगी.

समाधान : प्रत्ययसे निदर्शनवाला नामसर्ग है उससे रूपका निदर्शन किया जाता है. जैसे बुद्धकी मूर्तिका जो रूप और उस मूर्तिका नाम. अगर बुद्धमूर्तिकी जगह अन्य मूर्ति हों तो विरूपताके कारण वह नाम - रूपका प्रयोग नहीं किया जा सकता हैं. जो प्रमेय है वह प्रमाणका कारकपनेसे द्योतन करता है और प्रमाण है वह प्रमेयका ज्ञापकपनेसे द्योतन करता है. इसप्रकारसे ही वाक्पतिता और विबुधेश्वरता का निरूपण यहां किया गया है.

कृष्णनामसहस्रस्येत्यादिनामत्रयस्य व्याख्या

जगत्को ब्रह्मका कार्य माननेके बजाय जगत् ब्रह्मकी लीला है इस प्रकारका विशिष्टज्ञान होना भक्तिके लिये अत्यन्त आवश्यक है. यह लीलाका निरूपण श्रीभागवतमें सर्गादि दशविधलीला द्वारा हुआ है. इन दशविधलीलाओंके कर्ता स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं ऐसा निरूपण श्रीआचार्यचरणने पुरुषोत्तमसहस्रनाम ग्रंथमें किया है. इसलिये श्रीप्रभुचरणने श्रीमहाप्रभुजीके लिये 'कृष्णनामसहस्रस्य वक्ता'नाम प्रकट किया है. पुष्टिजीवोंके बीजभाव भक्त्यात्मक कमलमें खिले ऐसे

अनेकविध उपदेश श्रीमहाप्रभुजीने किये हैं जिसका प्रभुचरणने 'भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यनिरूपकः'नाम द्वारा उल्लेख किया है. 'भक्तपरायणः'नाम भी देहलीदीपक न्यायसे दोनों नामोंमें अन्वित हो सकता है.

ग्रन्थकारने इन नामोंमें गूढ़तया छिपे हुए कर्तव्योपदेश और साधना प्रक्रिया का इस ग्रंथमें निरूपण किया है. मूलतः लोकसिद्ध अर्थका विनियोग अलौकिक धर्ममें करनेसे लोकसिद्ध काम क्षीण हो जाता है और जीवन्मुक्त बनके पंचम पुरुषार्थवाली भागवती भक्ति प्राप्त होती है. इस प्रकारकी भक्ति सर्वत्र उपलब्ध ब्रह्म, भीतर बिराजमान परमात्मा, ऊपर रहते भगवान और भूतलपर सहवर्ती श्रीकृष्ण को response देनेमें समर्थ हो पाती है. ऐसी निर्गुणभक्ति उपलब्ध करानेके लिये श्रीमहाप्रभुजीने यमुनाष्टक स्तोत्र प्रकट किया है जिससे दोषोंकी निवृत्ति, भगवद्रति, पुष्टिमार्गीय सकल अर्थोकी सिद्धि, भगवत्तोष और स्वभावपर विजय प्राप्त होता है. यह प्राप्त होनेपर जीवको तनुनवत्वकी सिद्धि और भूतलपर ही श्रीकृष्णकी दिव्यलीलाओंका दर्शनका अवसर मिलता है! पुष्टिजीवके लिये इससे अधिक कृतार्थता क्या हो सकती है! "**नातः परतरो मन्त्रः नातः परतरः स्तवः नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात् परम्**"

श्रीगोपीनाथप्रभुचरणसप्तविंशतिनामानि

संप्रदायके स्थापनमें आचार्यत्रयी-श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगोपीनाथजी और श्रीगुसांईजी-की भूमिका समान है. फिर भी किसी कारणसे दुर्भाग्यवश उनको मर्यादामार्गीय माननेकी भ्रान्तधारणाने उनके इस महत्त्वको क्षति पहुंचायी है.

आलेखकारने श्रीगोपीनाथजीके कुल सताईस नामोंका स्तोत्र संकलित किया है. इन नामोंद्वारा उनका सम्पूर्ण जीवनचरित्र, रचनायें, परिवार, तीर्थाटन, आदि का उल्लेख है. भूतलपर अल्प आयु बिराजते होनेपर भी संप्रदायके प्रति उनके विशाल योगदानको उजागर करनेमें ये नाम महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे.

'लघुग्रन्थसंग्रह'का प्रथम भाग वि.स.२०७०में प्रकाशित हुआ था. उस संकलनमें कुल बाईस आलेख प्रस्तुत किये गए थे जिनमें सम्प्रदायके दृष्टिकोणसे धर्म-दर्शन, इतिहास और भक्ति को दरसाया गया था. इस संकलनमें बारह लघुग्रन्थ योजित किये गये हैं.

शरदोत्सव-२०७३

निकिता - जगदीश - अनिल

विषयानुक्रमणिका

ग्रन्थक्रम		पृष्ठक्रम
१.	ब्राह्मिक याथार्थ्य और ब्रह्मवाद की नानावादानुरोधिता	०१-२१
२.	एकस्याद्वितीयस्य बहुभवनप्रकारनिरूपणम्	२२-३६
३.	अविद्यापञ्चपर्वाध्यासदोषोपशमप्रक्रिया	३७-४०
४.	श्रुतिगीतासूक्ष्मटीकाकारिकातात्पर्यनिरूपणम्	४१-५४
५.	भक्तिसर्गभक्तिमार्गाविरोधनिरूपणम्	५५-६०
६.	पुरुषोत्तमजोशीवार्तास्थवचनामृतव्याख्या	६१-६८
७.	'कथाइमास्ते' पद्यव्याख्या	६९-८१
८.	उपनिषदुक्तरसस्य नाट्यशास्त्रोक्तरसेन ऐक्यमनैक्यम् वेति रसमीमांसा	८२-९०
९.	कृष्णभक्तेः रसात्मकत्वनिरूपणम्	९१-९२
	परिशिष्टम्	
	श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रप्रवचनान्तर्गतनामव्याख्या	**९३-११२**
१०.	पूर्णानन्दपूर्णकामनामनिरूपणम् २०१५	९३ - ९८
	वाक्पतिविबुधेश्वरनामनिरूपणम् २०१५	९९-१०५
११.	कृष्णनामसहस्रस्येत्यादिनामनिरूपणम् २०१६	१०६-११२
१२.	श्रीगोपीनाथप्रभुचरणसप्तविंशतिनामानि	११३-११४
	उद्धृतवचनानुक्रमणिका	११५-१२०

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

ब्राह्मिक याथार्थ्य और ब्रह्मवाद की नानावादानुरोधिता

[एकः कथम् अनेकधा सृष्टिं करोति? इति आशंक्य आह 'अचिन्त्यान्तशक्तेः तद् यदेतद् उपपद्यते, अतएव श्रुतौ भेदाः सृष्टेः उक्ताः हि अनेकधा'... श्रुतौ नानाप्रकरणेषु सृष्टिभेदाः सहस्रशो निरूपिताः... श्रुत्यादिभेदेषु नानाप्रकारेण प्रतिपादितत्वाद् अन्योन्यविरोधाद् न किञ्चित् प्रमाणं ब्रह्मणि भविष्यति इति आशंक्य आह 'सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद्' वस्तुतस्तु श्रुतौ नानावाक्यानाम् एकवाक्यता निरूपिता, सर्वभवनसामर्थ्येन विरुद्धधर्माश्रयत्वात्... सर्वे वादाः स्वभ्रान्तिपरिकल्पित्वेन वस्तुस्पर्शाभावाद् अनवसरपराहताएव. अस्तु वादिनां हृदयं यथातथा. वाक्यानां सरस्वतीरूपत्वात् कथं न एकवाक्यता इति आशंक्य आह 'नानावादानुरोधि तद्' इति एकैको वादो ब्रह्मणः एकैकधर्मप्रतिपादकवाक्यशेषइति भगवान् तान् सर्वानेव अनुसरति]

(त.दी.नि.१।४०-७९).

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यकी दार्शनिक व्यवसायात्मिका अवधारणाका अनुव्यवसायात्मक बोध ही महाप्रभुने प्रस्तुत विषयवाक्यतया उदाहृत वचनमें यहां स्पष्ट किया है. महाप्रभुके बहुत बाद, करीब सो सवासो वर्षोंके बाद, महाप्रभुकी दार्शनिक अवधारणाका 'शुद्धाद्वैतवाद' नामकरण संस्कार हुवा लगता है. अन्यथा स्वयं महाप्रभुद्वारा कण्ठोक्त स्वमतसंक्षेप तो "शुद्ध ब्रह्म (देशकालस्वरूपतः अपरिच्छिन्न) ही

साकार (अनन्त नामरूपकर्मात्मना प्रकट) होता है और माया तो उसकी ही उत्तमा (सर्वभवनसामर्थ्यरूपा स्वरूपान्तर्भूता) शक्ति है. और अतएव सर्वत्र (सभी अब्रह्मविदोंको) सम्मोह हो जाता है, परन्तु ऐसे मोहसे मुक्ति पानेका उपाय तो, उस ब्रह्मके मौलिक स्वरूपमें साक्षाद् भक्ति प्रकट होनेपर ही शक्य है'' (सुबो.१।७।४). अतएव सर्वोत्तमस्तोत्रमें गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण भी **''साकारब्रह्मवादैकस्थापको वेदपारगः''** (सर्वो.स्तो.८) संकेतित करके इसी तथ्यकी पुष्टि करते हैं. उल्लेखनीय हो जाता है स्वयं महाप्रभुद्वारा 'शुद्धाद्वैतवाद' अभिधान प्रचलित किया गया होता तो १०८ नामोंमें एकाद नाममें तो प्रयुक्त हुवा ही होता. शुद्धाद्वैतमार्तण्डकार श्रीगिरिधरजी द्वारा मायासम्बन्धसे रहित शुद्ध ब्रह्मके अद्वैतको 'शुद्धाद्वैत' के रूपमें परिभाषित किये जानेपर बादमें यह नाम बहुप्रचलित हुवा है. इस परिभाषामें महाप्रभुद्वारा प्रस्तुत कारिकामें मान्य रखे गये इधर मायाके स्वरूपकी समुचित व्याख्या नहीं हो पाती है तो उधर 'शुद्ध' पदकी भी अतीव संकीर्ण व्याख्या मिल रही है. अन्यथा 'शुद्ध'पदकी और 'अद्वैत'पदकी सुस्पष्ट व्याख्या स्वयं महाप्रभुके शब्दोंमें देखनी हो तो **''अयं प्रपञ्चो न प्राकृतो नापि परमाणुजन्यो नापि विवर्तात्मा नापि अदृष्टादिद्वारा जातो नापि असतः सत्तारूपः[शुद्ध] किन्तु भगवत्कार्यः परमकाष्ठापन्नवस्तुकृति-साध्यः तादृशोऽपि भगवद्रूपः[अद्वैत]''** (त.दी.नि.प्र.१।२३) इस निरूपणमें खोजी जा सकती है.

'पत्रावलम्बन' नामक अपने लघुकाय ग्रन्थमें महाप्रभुका एक अति महत्त्वपूर्ण विधान ब्रह्मके बारेमें यों मिलता है. उसका फलितार्थ यह है कि ब्रह्मवादके अनुसार, वैसे तो देखा जाय तो ब्रह्मकी कोई निरुक्ति=परिभाषा सम्भव ही नहीं है; क्योंकि,

जब ब्रह्मवादका मूल अभिप्राय यह हो कि सभी कुछ ब्रह्म है और ब्रह्मके सिवा कुछ हो ही नहीं सकता तो निरुक्तिके लिये अपरिहार्य इतरव्यावर्तक धर्म मिलना भी शक्य नहीं रह जाता. उसके बिना, अतएव, ब्रह्मको परिभाषित करना भी सम्भव ही नहीं. फिरभी स्वयं ब्रह्म ही एकमेवाद्वितीय होनेपर भी स्वेच्छया स्वसामर्थ्यसे वक्ता वचनक्रिया वाक्य और वाक्यार्थ आदि अनन्तविध रूपभेदोंमें प्रकट भी हुवा है. सो ऐसे ऐच्छिक भेदका अवलम्बन कर कुछ ब्रह्मके बारेमें बोला भी जा सकता है. अतएव ब्रह्म अपने लीलापरिगृहीत भेदवश अवाच्य न भी रह गया हो पर इदमित्थतया निर्वाच्य तो हो नहीं पाता. अतएव उपनिषदोंमें उस औपनिषद पुरुषको 'अनन्यप्रोक्त' भी कहा गया है तो 'अवाङ्मनोगोचर' भी कहा जाता है (द्रष्ट.कठोप.२।८, नृसिंहो.उप.२). वैसे ब्रह्मसूत्रकार "**अथात आदेशो 'नेति-नेति'**" (बृह.उप.२।३।६) श्रुतिवचनका वास्तविक अभिप्राय दिखाते हुवे कहते हैं "**प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः**" (ब्र.सू.३।२।२२) यहां भाष्यकारने यह स्पष्ट कर दिया है कि जागतिक दृष्टिसे सम्भावित धर्मोंका निषेध किया जा सकता है परन्तु वेदैकप्रतिपाद्य ब्रह्मके वेदोपनिषद्में प्रतिपाद्य गुणधर्मोंका निषेध शक्य नहीं.

अतः शुद्धाद्वैतवादके दृष्टिकोणसे महाप्रभुकी वेदादि शास्त्रमूलक दार्शनिक धारणाओंका स्वरूपनिर्धारण करना हो तो तत्तद् वेदोपनिषद्वाक्यचिन्तनके निष्कर्षरूप [१]विरुद्धधर्माश्रयब्रह्मवाद [२]अभिन्ननिमित्तोपादानकारणतावाद [३]सत्कारणतावाद [४]सत्कार्यतावाद [५]आविर्भावतिरोभाववाद [६]कार्यकारणतादात्म्यवाद [७]अंशांशितादात्म्यवाद और [८]लीलारूपसृष्टिवाद इतने आधारस्तम्भरूप वादोंको मान्य रखना और इनसे

विरुद्ध मतोंके पोषक वादोंको अमान्य करना भी ब्रह्मवादी चिन्तनके अन्तर्गत अपरिहार्य विचारनीति है. अत: अचिन्त्य ब्रह्मके बारेमें अपनी सीमित सामर्थ्यवश किये जाते चिन्तनके समय इस नियममें बंधना जितना अपरिहार्य है, उतना ही ब्रह्मके अचिन्त्य स्वरूपके अनुरोधवश इनसे विरुद्ध भी मतवादोंको ब्रह्मके बारेमें शक्य मानना आवश्यक हो जाता है अन्यथा ब्रह्मके स्वरूप और सामर्थ्य को हमारे चिन्तनमें परिच्छिन्न बनानेके हम अपराधी बन जायेंगे. अत: [१]विरुद्धधर्माश्रयब्रह्मवाद और [८]लीलारूपसृष्टिवाद रूपी दो कोष्ठकचिह्नोपम वादोंके अन्तर्भूत [२-७]वादोंसे विरुद्ध वादोंका भी समावेश भी सहज उपपन्न हो पाता है. और उन्हें अपने ग्रन्थोंमें स्वयं महाप्रभुने भी यत्रतत्र अंगीकार किया भी है. कयोंकि महाप्रभुके अनुसार 'तादात्म्य'की अवधारणामें न तो आत्यन्तिक द्वैत और न आत्यन्तिक अद्वैत और न इनके समुच्चय का ही कोई अवकाश है. तादात्म्यका स्वरूप भेदसहिष्णु अभेद माना गया है. एक अद्वितीय की अनेकता नकि सजातीय विजातीय स्वगत भेदोंके वश भिन्न-भिन्न अनेकोंकी किसी तरहके साधारण धर्मकी एकता. उदाहरणतया सर्वथा भिन्न अनेक द्रव्य-गुण-कर्मादिरूप वस्तुओंमें सत्तासामान्यरूप एक वास्तविक धर्मका प्रतिपादन तादात्म्यवादावलम्बी नहीं माना जा सकता. या शब्द और शब्दार्थ के भिन्न होनेपर भी दोनोंमें आहार्य अभेदारोप करनेवाली मति भी विवक्षित तादात्म्यवाद नहीं हैं. स्वयं भेदसहिष्णु-अभेदवादकी तरह अभेदसहिष्णुभेदवाद भी तादात्म्यवादका अन्यतर रूप तो हो ही सकता है. अर्थात् प्रस्तुत सन्दर्भमें एकमेवाद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्मके सर्वभवनसामर्थ्यवश परस्परभिन्नतया प्रकट हुवे परस्परविरुद्ध अनन्त नाम अनन्त रूप तथा अनन्त कर्मों की अनेकता है. धर्मिरूप सच्चिदानन्द ब्रह्मकी

एकतामें अन्तर्निहित धर्मरूपा सत्ता चेतना और आत्मरति रूपी अनेकताका आविष्करण है.

सर्वप्रथम तादात्म्यवाद अथवा भेदवाद या मिथ्यात्ववाद के परस्पर विरोधके सन्दर्भमें महाप्रभुकी धारणाकी मीमांसा करनी हो तो कुछ विधान अनिवार्यतया अवलोकनीय हैं :

१.'' 'इदं हि विश्वम्' इस विधानमें भगवान्का स्वरूप और चरित्र जो निरूपणीय है उसे दोके बीच भेद मान कर नहीं करना चाहिये. क्योंकि चरित्र यदि स्वरूपसे भिन्न हो तो उसके श्रवणसे संसार ही फलित होगा मुक्ति नहीं. अतः दोनोंके बीच अभेद दिखलानेको 'इदं विश्वं भगवान्' कहा. इस विधानमें उद्देश्यरूप विश्व तो जो प्रत्यक्षसिद्ध है उसका अनुवाद 'विश्व'पद द्वारा हो रहा है. ऐसे विश्वके बारेमें उसके भगवद्रूप होनेका यहां विधान किया जा रहा है. अतः कृतार्थ करनेवाली सर्वत्र भगवद्दृष्टिसे निहारनेकी यह बात है. ''सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलान्'' इस श्रुतिका सूचन 'हि'शब्दद्वारा हो रहा है. उत्तम मध्यम और अधम अधिकारोंके भेदवश तीन तरहसे यहां वर्णन करना चाहिये. सो उत्तम अधिकारियोंको होते भानका प्रकार तो दिखा दिया. सो अब मध्यम अधिकारवालोंको 'इदं विश्वं भगवानिव' विश्व भगवान्के जैसा ही लगता है नकि साक्षात् भगवद्रूप. इसका अभिप्राय यह है कि विश्वका सन्मान आदि भगवान्की तरह करनेपर भी आसक्ति तो भगवान्के साक्षात् रूपमें रखनी चाहिये.

निकृष्ट अधिकारवालोंको 'इदं विश्वं भगवान् इतरो' अर्थात् भगवान् विश्वसे भिन्न भासित होते हैं. इस तरहके प्रपञ्चका दर्शन करनेवाला बहिर्मुख भ्रष्ट हो जाता है. प्रश्न उठ सकता है कि एक ही भगवान्के तीन रूप कैसे हो सकते हैं? उसका समाधान 'यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः' द्वारा दिया जाता है. क्योंकि जगत्की स्थिति भगवान्में है और भगवान्की जगत्में सो जगत्के स्वयंमें स्थित होनेके कारण जगद्रूप भगवान् ही बने हैं. मध्यमाधिकारवालेको, परन्तु, भगवान्मेंसे जगत्का उद्भव हुवा लगता होनेके कारण कार्यरूप जगत् और कारणरूप भगवान् के बीच तादात्म्य अर्थात् कार्यात्मना भेद कारणात्मना अभेद लगता है. कहा जाता है कि तादात्म्य भेदसहिष्णु अभेद होता है. अतः जगत् भगवान्के जैसा लगता है. और जो समझ नहीं पाते हैं उन्हे लगता है कि भगवान् तो जगत्के प्रलयकर्ता होते हैं सो जगत् नाशवान् है और भगवान् सनातन अविनाशी होनेके कारण जगत्से भिन्न होने चाहिये''.

(सुबो.१।५।२९).

२/क.''जैसे मकड़ी अपने जालको बुननेको एक तार अपने मुखके भीतरसे बाहर उगलती है. उसी तरह भगवान् भी त्रिविध सृष्टि प्रकट करनेको तीन गुणोंको अपने सच्चिदानन्द स्वरूपमें से बाहर प्रकट करते हैं. इनमें सदंशमेंसे निर्गत सत्त्वगुण बन जाता है. केवल चिदंशमेंसे उद्गत रूप क्रियाशक्तिकी प्रधानतावाला और सदानन्दके गौण हो जानेके कारण रजोगुण बन जाता है. और आनन्दांशसे बहिरागत

रूप तमोगुण कहलाता है. आरम्भमें तो ये सत्त्व रज और तम भगवद्रूप ही होते हैं. यद्यपि भगवान्‌में अपने उद्‌गमसे पहले ये नहीं थे, ऐसा काशकृत्स्नका मत है. क्योंकि पहलेसे इन्हें भगवान्‌में विद्यमान माननेपर भगवदात्मक होना मान्य नहीं हो पायेगा. रुईमें सूत पहलेसे कहां होता है? उसे तो कातके बाहर निकालना पड़ता है. रुईमेंसे सूत काते जानेकी प्रक्रियामें रुईके अवयव सूत बन कर निकलते हैं. इसलिये भगवान् पहले निर्गुण थे.

२/ख.''संहत जो अवयव होते है वे उपचित हो कर अपनेमें गुप्त अवयवीको प्रकट करते हैं.''

(सुबो.२।५।१९, २।१।२४).

३.''स्वप्नमें अनुभूत होती सृष्टि मायामात्र होती है क्योंकि 'कात्स्न्र्येन अभिव्यक्त न होनवाला स्वरूप है' किसी वस्तुकी कृत्स्नता उसका निश्चित देश, निश्चित काल और स्वयं वस्तुका किसी तरहका निश्चित स्वरूप हो तो प्रकट होती है. स्वप्नमें वैसी कृत्स्नता प्रकट नहीं हो पाती... ''ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं तत् सत्यम्'' (छान्दो.उप.६।८।५)... ऐसी अनेकानेक श्रुतिओंके आधारपर यह जगत् ब्रह्मात्मक है. ब्रह्मके साथ तादात्म्यभावापन्न हानेके कारण सत्य माना गया है. ऐसा स्वप्नप्रपञ्चके बारेमें श्रुतिमें कहा नहीं गया... स्वप्नको दृश्य जगत्‌से भिन्न भी माना नहीं जा सकता क्योंकि जाग्रत अवस्था और स्वप्नावस्था दोनोंको देखनेवाला जीव तो एक ही होता है दो नहीं... स्वप्नमें देवताओंके प्रकट हो कर कुछ आज्ञा आदि प्रदान करनेकी कथा तो उन देवताओंके

जीव और ब्रह्म दोनोंमें मोजूद होनेके कारण प्रामाणिक मानी जाती है. कहीं भगवदावेशके कारण भी स्वप्नका कुछ थोड़ासा संवाद प्रमाणिक माना जा सकता है. अतः जाग्रद्विश्वसे स्वतन्त्र सत्ता स्वप्नजगत्की मानी नहीं जा सकती है. तब तो सिद्ध हो गया कि स्वप्न मायामात्र है.

(अणुभा.३।२।४).

इस प्रतिपादनशैलीका सूक्ष्मेक्षिकया विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म और जगत् के बीच रहे भेदसहिष्णु-अभेदरूप तादात्म्यके घटक मौलिक अभेदपर दृष्टिभार होनेपर ब्राह्मिक याथार्थ्यकी उत्तमानुभूति होती है.

यदि दृष्टिभार तादात्म्यके घटक भेदाभेद दोनोंपर हो तो मध्यमकक्षाकी ब्रह्मानुभूति होती है. जैसाकि सादृश्यके बारेमें कहा गया है कि ''तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम्''.

और केवल भेदपर दृष्टिभार होनेपर अधमकक्षाकी ब्रह्मानुभूति स्वीकारी गयी है. फिरभी उसे मिथ्यानुभूति नहीं माना गया है.

इसके विपरीत द्रष्टाकी आन्तरालिकी स्वप्नसृष्टि जो अनुभूत होती है, उसकी सत्ता देशकालवस्तुसापेक्ष स्वतन्त्र सत्ता तो हो नहीं सकती. अतः ऐसी देशकालवस्तुनिरपेक्ष सत्ताको मायिक माना गया है. साथ ही साथ देशकालसापेक्ष असमर्थ बाह्यवस्तुके विपरीत देशकालनिरपेक्ष अलौकिक सामर्थ्यसम्पन्न देवादि पदार्थोंके स्वप्नके

उदाहरणमें अनुभूति-अनुभूयमानवस्तुके परस्पर संवादके सम्भावित तथ्यके आधारपर स्वाप्निक अनुभूतिका प्रामाण्य भी अपवादरूपेण मान्य रखा गया है. एतावता अनुभूति और अनुभूयमान विषय के बीच देशकालवस्तुसापेक्ष मिथ्यात्व तो अवश्य कण्ठोक्ततया सिद्ध होगा.

वस्तुकी, परन्तु, आन्तरिक मायिकी सत्ता भी मान्य की गयी है यह अवधारणीय है. उस माया या अविद्या के द्वारा द्रष्टाकी बुद्धिमें उत्पन्न किया गया जो मायिक आकार होता है वह बुद्धिमें भी यदि देशकालवस्तुनिरपेक्षतया विद्यमान न हो तो असत्ख्यातिवाद गलेपतित होगा.

महाप्रभु, जबकि, उसे अस्वीकार कर अन्यख्यातिवादको प्रस्थापित करना चाहते हैं "**'विपर्यास' पुरोवस्थित वस्तुसे किसी भिन्न वस्तुका अवभास होना है. भ्रान्त पुरुषकी क्रिया पुरोवस्थित वस्तुविषयक होती है और ज्ञान किसी दूसरी वस्तुका हो रहा होता है. अतः अन्यख्याति ही सिद्धान्ताभिमत है... बुद्धि स्वयं एक भिन्न तत्त्व है अतः आत्मख्याति मानी नहीं जा सकती. बुद्धिमें भ्रम पैदा होनेके लिये संस्कार और शब्द भरे रहते हैं वे केवल पदार्थकी ही अपेक्षा रखते हैं पदार्थके कहां था या कब था ऐसी देशकालविशिष्टताकी नहीं ... अतः बुद्धिमें पदार्थके संस्कार प्रबल होनेके कारण भ्रमज्ञान उपपन्न हो जाता हो तो अकारण ही जो न सत् और न असत् हो ऐसे रजत्की उत्पत्ति 'शुक्तिरजत'भ्रममें स्वीकारना अनावश्यक है. अतएव जो कहीं भी न हो और कभी भी न हो ऐसा असत् विषय भ्रममें अवभासित होता है यह धारणा भी उचित नहीं लगती. अतः अन्यख्याति ही मानना सभीके अनुभवके आधारपर उचित लगता है**" (सुबो.३।२६।३०).

एतावता यह स्पष्ट हो जाता है कि आन्तरालिकी बोधात्मिका सत्ता महाप्रभुको अमान्य नहीं है.

यह तो अलौकिक सामर्थ्यसे सम्पन्न देवादि पदार्थोंके संवादके अपवादकी है. नामसृष्टिका पृथक् अंगीकार महाप्रभुके दर्शनका जो **''नमो भगवते तस्मै कृष्णाय अद्भुतकर्मणे रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः''** (त.दी.नि.१।१) मंगलाचरण है उसके आधार भी सिद्ध तथ्य है.

यहां भी प्रथम ''यः क्रीडति'' पक्षके अन्तर्गत प्रकट होती नाम-रूप-कर्मोंकी विविधता तादात्म्यान्तर्गत अभेदकी प्रधानता लेकर निरूपित हुयी है.

''यः जगद् भूत्वा क्रीडति'' रूप द्वितीय पक्षके अन्तर्गत प्रकट होती नाम-रूप-कर्मोंकी विविधता तादात्म्यान्तर्गत या तो भेदाभेद या भेद की प्रधानता लेकर निरूपित हुयी है.

इसी तरह तृतीय ''यतो जगत् क्रीडति'' पक्षके अन्तर्गत प्रकट होती नाम-रूप-कर्मोंकी विविधता मायाकी प्रधानता लेकर निरूपित हुयी है. अतएव इस कल्पकी व्याख्या करते हुवे महाप्रभु प्रकाशमें कहते हैं **''यहां इन मायिक नाम-रूप-कर्मोंमें भगवान् उपादानतया या निमित्तकारणतया लिप्त नहीं होते(अर्थात् केवल साक्षिभावरूप विवर्तोंके अधिष्ठानतया कर्ता बनते हैं).**

नामसृष्टिका रूपसृष्टिके साथ तुलनात्मक स्वरूप प्रतिपादन करनेवाले

महाप्रभुके वचनके आधारपर इसे निश्चित किया जा सकता है.

> **''रूपसृष्टिकी अपेक्षया नामसृष्टि विलक्षण होती है : रूपसृष्टि अन्तवती तो नामसृष्टि अनन्त होती है, रूपसृष्टि स्थूल और नामसृष्टि सूक्ष्म होती है, रूपसृष्टि विकृत तो नामसृष्टि कूटस्थ अविकृत होती है, रूपसृष्टि जडरूपा और नामसृष्टि बोधरूपा होती है. यहां शंका उठती है कि तब तो नामसृष्टिमें रूपसृष्टिरूप जगत्के विलीन होनेकी शक्यताके कारण प्रलय हो जायेगा. ऐसी आशंकाके समाधानार्थ 'नानावादानुरोधाय' कहा. अर्थात् सिद्धान्त, सिद्धान्ताभास और सिद्धान्तका पाषण्ड ऐसे नाना वादोंके अनुरोधको भगवान् स्वीकार लेते हैं, जो जैसे भगवान्का निरूपण करना चाहता हो उसके लिये भगवान् वैसे बन जाते हैं क्योंकि भगवान्में वाच्य होनेकी तरह वाचक होनेकी भी शक्ति रहती है. वाच्य अर्थ होता है और वाचक शब्द. इन दोनों तरहके रूपधारण करने भगवान् शक्तिमान् होते हैं. जो जैसा बोलना चाहे वैसे अर्थका रूप धारण करने समर्थ होते हैं''.**
>
> (सुबो.१०।१३।४३).

यहां जैसे सिद्धान्तके वाचक विधानोंके अनुरूप भगवान्का वाच्यस्वरूप होता है वैसे ही सिद्धान्ताभास और पाषण्डपूर्ण अपसिद्धान्तके वाचक शब्दोंके अनुरूप भी भगवान्का वाच्यस्वरूप होता है. यहां ब्रह्मवादीय सिद्धान्तके प्रामाण्यके उपपादानार्थ ब्रह्मवादसे विरुद्ध अपसिद्धान्तोंके वाचक शब्दोंके अनुरूप भी भगवान्का वाच्यस्वरूप सम्भव जो माना गया है वह उन्हें ब्रह्मवादके अन्तर्गत मान्य

करने या ब्रह्मवादसे बहिर्भूततया मान्य करने? स्पष्ट है कि ब्रह्मवादके अन्तर्गत मान्य करेंगे तो स्वयं ब्रह्मवादका ही परित्याग करना पड़ेगा. अतः बहिर्भूततया ही मान्य करना पड़ेगा. वह तो ब्रह्मकी औत्सर्गिकी विरुद्धधर्माश्रयतारूप सर्वभवनसामर्थ्यका अवलम्बन करके शक्य बनेगा अथवा आपवादिकी तत्तद्मतिओंके अनुरूप निजस्वरूपधारण करनेकी असाधारण सामर्थ्यके अवलम्बनद्वारा शक्य बनेगा. इसे 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्य' भी कहा जाता है. अतएव महाप्रभुने तत्त्वार्थदीपनिबन्धमें इसे यों समझाया है :

''जबतक ब्रह्मका पूर्णतया ज्ञान नहीं होता तबतक वेद गीता ब्रह्मसूत्र-जैमिनीसूत्र और भागवतकी समाधिभाषा के परस्पर समन्वित एकवाक्यतापन्न शब्दराशीको प्रमाण माननेकी बात समझा कर पूर्णज्ञान सिद्ध होनेपर तो भगवान् सर्वरूप होनेके कारण भगवान्की नामलीलाके भी अनेक प्रकार शक्य होनेसे उनमें प्रकट होते विरोधाभासोंको भुला कर वाणीमात्रको प्रमाण मानना अभीष्ट है. वाणीमात्र प्रमाण होती है क्योंकि अर्थरूप तो भगवान् ही होते हैं. भगवान्की जैसे रूपलीला है वैसी ही नामलीला भी है ही. ऐसी स्थितिमें जिन दो वचनोंमें विरोधाभास लगता हो उसे बुद्धिग्राह्य कैसे बनाना! समाधनतया कहना होगा कि या तो भगवान्की कोई अलौकिक सामर्थ्य स्वीकारनी पड़ेगी या फिर भगवान्के सर्वरूप होनेके कारण उनके परस्पर विरोधी रूप भी हो सकते हैं ऐसे स्वीकारना पड़ेगा.

(त.दी.नि.प्र.१।९).

अतएव महाप्रभुके मतमें ब्रह्मके अखण्डाद्वैतवादकी तुलनामें सखण्डाद्वैतवाद कुछ न्यून कक्षापर मान्य किया गया है. इस उभयविध ब्रह्मवादकी तुलनामें पूर्वमीमांसाप्रतिपाद्य आधिदैविकवाद(अनेकदेवतावाद) , **''यो देवानां नामधा एकएव''-''यो देवानां प्रभवश्च उद्भवश्च''** (ऋक्संहि.१०।८२।३-श्वेता.उप.३।४) ब्राह्मिक तथ्यकी असावधानीके वश और न्यून कक्षापर मान्य रखा गया है.

इस आधिदैविकवादसे न्यूनकक्षापर आता है भेदवाद क्योंकि इसमें **''एकमेवाद्वितीयं... तद् ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेय''** (छान्दो.उप.६।२।३) इस ब्राह्मिक अद्वैतमें ऐच्छिक द्वैतके इतिवृत्तकी उपेक्षा की गयी होनेके कारण.

उससे भी अपकृष्ट मायावाद माना गया है क्योंकि इस मायावादमें **''न एनेन किञ्चन अनावृतं न एनेन किञ्चन असंवृतं... इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते. युक्ता हि अस्य हरयो शता दश इति. अयं वै हरयो अयं वै दश च सहस्राणि बहूनि च अनन्तानि च''-''माया च अविद्या च स्वयमेव भवति''** (बृह.उप.२।५।१८-१९-नृसिंहो.उप.९।३) इन श्रुतिओंमें प्रतिपादित मायाब्रह्मैक्यवादको विस्मृत किया गया है. अन्यथा स्वप्नसृष्टिकी अब्राह्मिकता अर्थात् केवल मायिकता तो वाल्लभ वेदान्तमें भी अभिप्रेत है ही (द्रष्ट.सुबो.१०।४३।४३).

अतएव वाल्लभ वेदान्तमें न तो अनिर्वचनीयख्याति और न असत्ख्याति मान्य की गयी है.

ब्रह्मवादके अन्तर्गत जैसे सर्वभवनसामर्थ्यवश कहीं किसी

सृष्टिमें सच्चिदानन्द ब्रह्मके पूर्णतया आविर्भावके साथ एक अनेकभावापन्न होता है वहां ''**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं तत् सत्यम्**'' (छान्दो.उप.६।८।७) श्रुतिवचन द्वारा सिद्ध सर्वब्रह्मतादात्म्यकी जो अनुभूति होती है वह पूर्ण अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानकी अवस्थामें ब्रह्मके अखण्डाद्वैतको भासित करती है.

अन्यथा ब्रह्मज्ञानकी शास्त्रीय शब्दजन्य परोक्षानुभूतिमें ब्रह्मके सखण्डाद्वैतको भासित करती है. वैसी अधिकारिता जहां नहीं होती वहां सर्वब्रह्मतादात्म्यकी नाम-रूप-कर्मोकी विविधतामें ब्राह्मैक्यकी अनुभूति या तो परस्पर भिन्न द्रव्यगुणकर्मोमें एक सत्तासामान्यके सदृश होती है या आहार्यबुद्धिके सदृश ही हो पाती है. वह भी ब्रह्मके ''एकोहं बहु स्याम्'' सत्यसंकल्पकी अनुविधायिनी होती है.

अन्ततः ब्रह्म ही अपनी बहुभवनसामर्थ्य तथा बहुभवनकामना के वश माया-अविद्या सत्यानृत रूपोंमें प्रकट हुवा होनेके कारण मायावादानुविधायिनी मति भी ब्रह्मकी लीलाविशेषकी ही अवगाहिनी बन पाती है.

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि अखण्डाद्वैत भी अब्राह्मिक होनेपर ब्रह्मवादी वाल्लभ दृष्टिकोणवश अनादरणीय बन सकता है और मायावाद भी ब्रह्मवादकी निकृष्टाधिकारिताके सन्दर्भमें मान्य हो सकता है.

इसे और अधिक महाप्रभुके स्वयंके विधानोंके आधारपर

सुनिर्धारित करना हो तो यह विधान सारे खुलासे कर देनेको सक्षम है :

> **''प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक विषय को लक्ष्यमें रख अनेक शास्त्र प्रवृत्त हुवे हैं. भगवान् उन सभी शास्त्रोंके अनुसार सभी प्राणिओंमें खुद विभिन्न लक्षणोंके द्वारा लक्षित रूपोंके साथ अवगत होते हैं. नैयायिकोंको लगता है कि भगवान् केवल कर्ता हैं. मीमांसकोंको लगता है कि क्रिया है. वेदान्तिओंको केवल आत्मा लगते हैं, सांख्य आदिको करण; और इस तरहके विविध दर्शनोंके भेदोपभेदोंके वश किसीको ज्ञान, किसीको ज्ञाता, तो किसीको ज्ञानाधिष्ठान लगते हैं. इन सभीको भगवान्के एक-एकदेशका बोध होता है, अन्धहस्तिन्यायेन. और इस विषयमें उनका बोध और तर्क ही नहीं प्रत्युत स्वानुभव भी दृश्य द्रष्टा बुद्धि आदि करणोपकरणोंकी सामग्रीके सहयोगसे तत्तद् असाधारण चिह्न जो प्रकट होते हैं उन्हें जान पाता है परन्तु वे जीवोंमें तो प्रमाणित हो नहीं पाते; अतः, भगवान्की वैसी विशिष्टताओंके परोक्षज्ञानके जनक बन जाते हैं''.**
>
> (सुबो.२।२।३७).

अतः ब्रह्मके सृष्टिभावापन्न होनेमें आविर्भाव-तिरोभाववाद सत्कारणवाद सत्कार्यवाद अविकृतपरिणामवाद कार्यकारणतादात्म्यवाद अंशांशितादात्म्यवाद ही ब्रह्मवादके उपोद्बलक होते हैं. अन्यथा दूधके दही बननेकी प्रक्रियामें जैसे विकृतपरिणामवाद लोकदृष्ट मान्य

रखना पड़ता है, वैसे ही तन्तुपटके उदाहरणमें आरम्भवादको मान्य न रखनेका कोई कारण नहीं. पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश रूपी पांच महाभूतोंसे आरब्ध देहको पाञ्चभौतिक संघात तो मानना ही पड़ेगा. इसी तरह अविद्याके पांच पर्वोंके कारण देहाध्यास इन्द्रियाध्यास प्राणाध्यास अन्त:करणाध्यास स्वरूपाज्ञान आत्मचेतना रूपी अधिष्ठानमें भ्रमारोपित माननेपर विवर्तवादको भी इन्कारा तो नहीं जा सकता. इसी तरह अहन्तामममतात्मक संसारको चिदंशरूप जीवात्मामेंसे आविर्भूत मानना अर्थात् कार्यकारणतादात्म्यवादके अनुरोधवश चिदंश और अहन्तामममता को इतरेतरात्मक मानना सिद्धान्ताभिमत कथा हो नहीं सकती. अत: विवर्तवाद स्वीकारना ही पड़ता है. अहंकारको एक स्वतन्त्र आन्तरिक करण माना गया है परन्तु इसके कारण देहदेहिभाववश जो देहमें भी और देहीमें भी अहंबुद्धि होती है वह प्रतीत्यसमुत्पाद नहीं तो और क्या हो सकता है? अत: लोकदृष्ट कार्यकारणभावके विविध उदाहरणोंमें प्रतीत होती विविधताको ब्रह्मदृष्ट्या आविर्भाव-तिरोभावतया इतरेतरतादात्म्यभावापन्न निहारनेपर भी स्वयं तादात्म्यके भेदसहिष्णु होनेके कारण तादात्म्यघटक भेदवशात् लोकसिद्ध विकृतपरिणाम आरम्भवाद संघातवाद विवर्तवाद या प्रतीत्यसमुत्पादवाद को झुठलानेकी आवश्यकता नहीं.

अतएव वह एकाकिनी अद्वितीय सत्ता कितनी तरहकी सत्ताओंके प्रकारभेदसे प्रकट हो सकती है. और उस विविधताका ब्रह्मवादी प्रक्रियाके साथ, उनके ब्रह्मवादके अन्तर्गत होनेपर समन्वय अथवा बहिर्भूत होनेपर अविरोध कैसे सम्पादित करना, एतदर्थ एक तालिकाके रूपमें स्थालीपुलाकन्यायेन विहंगावलोकन यों किया जा सकता है :

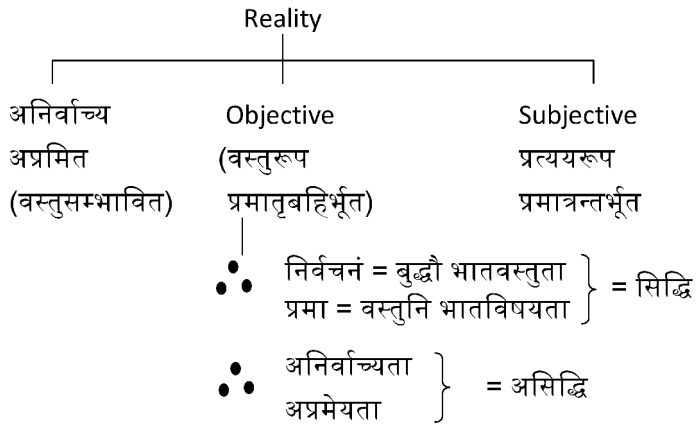
Reality
अनिर्वाच्य
अप्रमित
(वस्तुसम्भावित)
Objective
(वस्तुरूप
प्रमातृबहिर्भूत)
Subjective
प्रत्ययरूप
प्रमात्रन्तर्भूत
∴
निर्वचनं = बुद्धौ भातवस्तुता
प्रमा = वस्तुनि भातविषयता
= सिद्धि
∴
अनिर्वाच्यता
अप्रमेयता
= असिद्धि

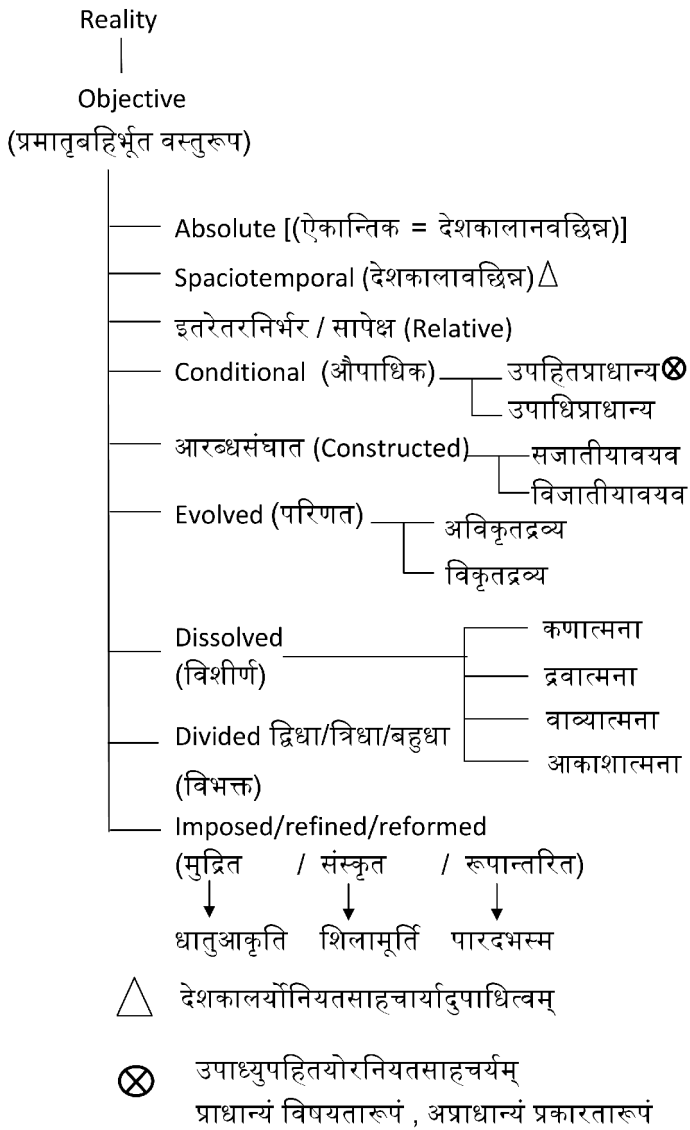
Reality
Objective
(प्रमातृबहिर्भूत वस्तुरूप)
Absolute [(ऐकान्तिक = देशकालानवच्छिन्न)]
Spaciotemporal (देशकालावच्छिन्न)△
इतरेतरनिर्भर / सापेक्ष (Relative)
Conditional (औपाधिक)
उपहितप्राधान्य⊗
उपाधिप्राधान्य
आरब्धसंघात (Constructed)
सजातीयावयव
विजातीयावयव
Evolved (परिणत)
अविकृतद्रव्य
विकृतद्रव्य
Dissolved
(विशीर्ण)
कणात्मना
द्रवात्मना
वाय्वात्मना
आकाशात्मना
Divided द्विधा/त्रिधा/बहुधा
(विभक्त)
Imposed/refined/reformed
(मुद्रित / संस्कृत / रूपान्तरित)
धातुआकृति
शिलामूर्ति
पारदभस्म
△ देशकालर्योनियतसाहचार्यादुपाधित्वम्
⊗ उपाध्युपहितयोरनियतसाहचर्यम्
प्राधान्यं विषयतारूपं , अप्राधान्यं प्रकारतारूपं

Reality
Subjective प्रत्ययरूप प्रमात्रन्तर्भूत
Mentally constructed
(संरचितप्रत्यय)
सालम्बन
निरालम्बन
Digitally constructed
सालम्बन
निरालम्बन
Hypothetically imagined
(उत्प्रेक्षित/तर्कित सत्य)
Descriptive (सिद्धनिर्देशात्मक)
Constructed (साध्यप्रयोजनक)
प्रतीत्यसमुत्पाद (तत्त्वज्ञानानिवर्त्य)
Conditional perception
Kaleidoscopic design + Kaleidoscope
उपहितप्राधान्य
उपाधिप्राधान्य
illusionary (तत्त्वज्ञाननिवर्त्य)
(अधिष्ठानसापेक्षभ्रमभात) (अज्ञानमूलकान्यथाभानरूपत्वात्)
Hallucination
(अधिष्ठाननिरपेक्ष) (ज्ञानकरणगतदोषनिरासेन निरास्य)
Synaesthesia
(असंकीर्णप्रत्ययोः संकीर्णवद्भावः)

यहां यह स्पष्टीकरण आवश्यक लगता है कि यद्यपि आकरग्रन्थोंके प्राचीन व्याख्याकारोंने जिन वादोंका प्रत्याख्यान किया है उन्हीं वादोंको वाल्लभ मतमें पृष्ठद्वारसे प्रवेश्य मानना प्रकृतहानि और अप्रकृताभ्युपगम किसीको लग सकता है. शुद्धाद्वैतवादमें; परन्तु, ब्रह्मके अखण्डाद्वैतके जागरुक रहनेपर भी, स्वयं महाप्रभुके द्वारा प्रकट किये कुछ अधोनिर्दिष्ट चार विधानोंपर दृष्टिपात आवश्यक है :

१.''अखण्डाद्वैतभानेतु सर्वं ब्रह्मैव न अन्यथा ज्ञानाद् विकल्पबुद्धिस्तु बाध्यते न स्वरूपतः. भिन्नत्वं नैव युज्येत ब्रह्मोपादानतः क्वचित् वाचारम्भणवाक्यत्वाद् भेदः केन उपजायते ?''.

(त.दी.नि.१।९१-९२).

२.''भेदः पारमार्थिकः इति शास्त्रं पुरस्कृत्य त्रिविधो भक्तियोगः उक्तः तमोरजस्सत्त्वैः भिन्नो, अस्मत्प्रतिपादितः च नैर्गुण्यः. एवं चतुर्विधोऽपि भगवता प्रतिपादितः''.

(सुबो.३।३२।३७).

३.''यदि ब्रह्म तावन्मात्रं भवेत् तदा अयं दोषः. तत् पुनः जीवाद् जगतः च अधिकं कुतः ? भेदनिर्देशात्, द्रष्टव्यादिवाक्येषु कर्मकर्तृव्यपदेशात् विज्ञानानन्दव्यपदेशाद् वा''.

(अणुभा.२।१।१२).

४.''सायुज्येतु रसाधिक्यं भेदेन अनुभवात् सदा''.

(त.दी.नि.३।५।१५५).

इन वचनोंमें देखा जा सकता है कि प्रथम विधानमें ब्रह्मस्वरूपदृष्टिके अनुरोधवश भेदका अस्वीकार है. द्वितीय विधानमें लीलार्थ प्रकटीकृत भेदका अवलम्बन करनेवाले तीन तरहके भक्तिमार्गसे चतुर्थ प्रकारके स्वयं द्वारा प्रतिपादित भक्तिमार्गको महाप्रभु पृथक् मानकर भी अन्य तीनों तरहके भक्तिमार्गोंको अप्रामाणिक नहीं मान रहे हैं. तृतीय विधानमें लीलार्थ प्रकट निज चिदंशरूप जीवात्मासे एकाद्वितीय परमात्माके भेदाधिक्यपर भार दिया गया है. और चतुर्थ विधानमें पुनः स्वरूपदृष्ट्या अमान्य भेदको भी लीलादृष्ट्या अधिक रसात्मक मान लिया गया है. इसमें वदतोव्याघात या गृहीतपक्षत्याग का आरोप लगाया नहीं जा सकता, तादात्म्यके भेदसहिष्णु-अभेद होनेके सिद्धान्तानुरोधके कारण. उसी विचारनीतिका अनुसरण करते हुवे इस प्रस्तुत तालिकाकी भी उपपत्ति समझ लेनी आवश्यक है.

गोस्वामी श्याम मनोहर

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ एकस्याद्वितीयस्य बहुभवनप्रकारनिरूपणम् ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

कनीनिकाभिः गोपीनामापीतं श्यामतां गतम् ॥
हृद्यानन्दं परात्मानं नौमि तं श्यामसुन्दरम् ॥१॥
परिभावितस्य भक्त्यात्र भक्तभावानुभावता ॥
नाभावो भवितुं शक्यः सर्वं भवितुमर्हतः ॥२॥
नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥
रूप-नामविभेदेन जगत् क्रीड़ति यो यतः ॥३॥
यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा ॥
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४॥
वाक्पतिकृतव्याख्यानाद् वेदगीतादिशास्त्रगाद् ॥
"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः"[१] ॥५॥
गीतोक्तार्थस्य मीमांसां कर्तुमत्र मनो मम ॥
सारं सर्वोपनिषदां श्रीकृष्णोक्तं मतं यतः ॥६॥
ततश्छान्दोग्यतैत्तिरीयबृहदारण्यकादिह ॥
संग्रहः श्रुतिवचनानामादौ संनियोजितः ॥७॥

(श्रुतिवचनसंग्रहः)

"कथम् असतः सद् जायेतेति सदेव, सौम्य!, इदम् अग्र आसीद एकमेव अद्वितीयं तद् ऐक्षद् बहु स्यां प्रजायेय इति"[२].

''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म... सो अकामयत बहु स्यां प्रजायेय इति... इदं सर्वम् असृजत. यदिदं किञ्च तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत्. तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्च अभवद् निरुक्तञ्च अनिरुक्तं निलयनञ्च अनिलयनञ्च विज्ञानञ्च अविज्ञानञ्च सत्यञ्च अनृतञ्च सत्यम् अभवत्. यद् इदं किञ्च तत् 'सत्यम्' इति आचक्षते''[३].

''तद्धेदं तर्हि अव्याकृतम् आसीत् तद् नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियते... स एष इह प्रविष्टः आनखाग्रेभ्यो यथा क्षुरः क्षुरधाने अवहितः... अत्रहि एते सर्व एकं भवन्ति''[४].

(एतदाशयनिरूपणम्)

'इदमा' निर्दिश्यमानं वै विश्वमेतत् पुरःस्थितम्॥
सदेवासीद् एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म तत् पुरा॥८॥
तस्यैव विश्वाकारेण 'बहु स्याम्'इति वाञ्छया॥
ब्रह्मात्मकं जगत् सर्वं तदा प्रादुरभूदिदम्॥९॥
कीदृग्बहुत्वं सञ्जातं तदपि श्रुतिनोच्यते॥
'सच्च त्यच्चे'त्यादिरूपं विरुद्धमिव सर्वथा॥१०॥
'सत्यज्ञानानन्त'नाम्नोः ब्रह्मणो जगतः पुनः॥
'सत्या'ख्याद्योतनादत्र 'ज्ञानानन्त'तिरोहितिः॥११॥
सान्तं जडात्मकं सत्यं ज्ञानस्य विषयात्मकम्॥
प्रादुर्भूतं जगदिदं श्रौतमत्र न संशयः॥१२॥
तस्यैकस्याद्वितीयस्य बहुधा व्याकरणं पुनः॥
'सच्च-त्यच्चा'दिरूपैः तत्राप्यनृतसंग्रहात्॥१३॥
''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः''॥
वाक्येऽप्यनृतमप्यत्र सत्यब्रह्मतया मतम्॥१४॥

इतेरेतरविरुद्धेषु स्वसृष्टेष्वेषु वस्तुषु ॥
मा भून् मिथ्यामतिस्तस्मात् स्रष्टा सृष्टेषु प्राविशत् ॥१५॥
सृष्टेरस्याः पुनश्चाविर्भूतायारुपपत्तये ॥
नामरूपात्मिका सृष्टिः पूर्वमव्याकृतोदिता ॥१६॥
तत्राप्याश्रयरूपेणान्तर्यामितयापि च ॥
बाह्याभ्यन्तरसंस्थितिः ब्रह्मणः प्रतिपादिता ॥
'क्षुरधाने क्षुर'वदेव दृष्टान्तेनोपपादिता ॥१७॥
श्रुतीनामुद्धृतानान्तु तात्पर्यविनिरूपणात् ॥
अथो प्रतिज्ञातविषयप्रवेशः क्रियतेऽधुना ॥१८॥

(विषयप्रवेशः)

सत्यं ज्ञानममन्तञ्चेत्युक्तावेकं हि तादृशं ॥
देशकालस्वरूपैश्चानवच्छिन्नमेव तत् ॥१९॥
एकस्यैवाद्वितीयस्यैच्छिकी भिन्नता ततः ॥
वस्तुसत्तास्वरूपेऽपि सत्ताभेदो ह्यनेकधा ॥२०॥
आनन्त्यमद्वये तस्मिन् रूपनाम्नोश्च कर्मणाम् ॥
तानि ज्ञानात्मकान्येव प्रोक्तं भागवते तथा ॥२१॥

" आसीज् ज्ञानमथो ह्यर्थं एकमेवाविकल्पितम् ॥

.....

वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद् बृहद् ॥२२॥
तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥
ज्ञानन्त्वन्यतमो भावो पुरुषः सोऽभिधीयते" [५] ॥२३॥

" एकएवाद्वितीयोऽभूद् आत्माधारोऽखिलाश्रयः ॥
कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिसु ॥२४॥
परावराणां परम आस्ते 'कैवल्य'संज्ञितः ॥

केवलानुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः''[६] ॥२५॥
इत्यादिवचनैः सिद्धं ज्ञानकैवल्यमेव तत्॥
नचात्मनः पृथग्भूतो ह्यर्थो ह्यासीत् पुरा यदा॥२६॥
आदौतु रूपनाम्नां वै कर्मणां ज्ञानरूपता॥
त्रयाणामपि ब्राह्मैक्यं ब्रह्मणश्च त्रिरूपता॥२७॥

''यद्वै तद् न विजानाति विजानन् वै तद् न विजानाति नहि विज्ञातुः विज्ञातेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद् नतु तद्द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यद् विजानीयात्''[७].

''त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि... सर्वाणि रूपाणि... सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति. तद् एतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा आत्मा उ एकः सन् एतत् त्रयम्''[८].

''यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः अविज्ञातं विजानताम् विज्ञातम् अविजानताम्''[९]

सृष्टावर्थरहितत्वे ज्ञानम् 'अनृतम्' उच्यते॥
तदेव स्रष्टरि पुनः सत्यम् एकं समुच्यते॥२८॥
''यदिदं किञ्च तत्सत्यं''श्रुतावेतद् यथोदितम्॥
सृष्टिभावापन्नस्रष्टुरेवाख्या 'सत्यम्' एव हि॥२९॥

''वाचारम्भणं 'विकारो' नामधेयं 'मृतिका' इत्येव सत्यम्''[१०]

(क/१.प्रमातृबहिर्भूतसत्तायाः आद्यः प्रकारः)

तस्माद् आद्यं वस्तुसत्त्वं निरवच्छिन्नमेव तत्॥

देशतः कालतश्चापि तत्त्वश्चाप्यतस्त्रिधा॥३०॥

(क/२.अथो द्वितीयः प्रकारः)

द्वितीयन्त्वथ कालेन स्वानुभावेन सर्वथा॥
स्वगतानन्तरूपादेः व्युच्चरणाद्धचंशतः पुनः॥३१॥
देशकालस्वरूपैस्तद्धचवच्छिन्नं भवेत् स्वयम्॥
तैत्तिरीये हि तस्यैव "सच्चे..."त्यादिवर्णना।३२॥

(क/३.तृतीयः प्रकारः)

तेषु तृतीयभेदस्तु हीतरेतरनिर्भरः॥
इतरेतरसापेक्षः कार्यकारणभावतः॥३३॥
प्रमितिप्रमेयभावांशांशिभावादिभिः पुनः॥
ईश्वरश्चेशितव्यश्च भक्तश्च भगवान् तथा॥३४॥
फलसाधनभावादिभेदैर्भिन्नो ह्यनेकधा॥

(क/४.तुरीयः प्रकारः)

तुरीयस्त्वथ ह्यौपाधिकत्वं ह्यनृतमुच्यते॥
किन्तूपाध्युपधेयोपहितस्य भ्रान्त्यभाततता॥३५॥
त्रयाणां तत्त्वज्ञानेऽपि ह्यनिवर्त्यतया मता॥
सत्यत्वं हि यथाकाशघटयोरुभयोरपि॥३६॥
घटोपहितखस्यापि तद्वदेवहि सत्यता॥
प्रभेदस्त्वनयोर्ज्ञेय गौणप्राधान्यभेदतः॥३७॥
उपाधेस्तु क्वचिज्ज्ञाने चोपधेयस्य वा क्वचित्॥

(क/५.पञ्चमः प्रकारः)

सजातीयविजातीयावयवारब्धताकृतम्॥३८॥

संघातानां सिद्धमेव सत्यत्वं केन वार्यते ? ॥
अवयवैरेकसंघातरूपः तद्वत्सजातिभिः ॥३९॥
मुक्ताभिरपि मालैका सर्वेषां दृष्टिगोचरा ॥
नह्यसत्या भ्रमाभातहेतोरत्र न संशयः ॥४०॥

(क/६.षष्ठः प्रकारः)

द्रव्यस्य प्रकृतिरूपस्य विकारोऽपि द्विधा भवेत् ॥
अप्रच्युतस्वरूपस्य कार्यभावेन संस्थितिः ॥४१॥
रूपान्तरेण यदि वा धर्मान्तरतयापि च ॥
स्वरूपप्रच्युतिपूर्वा विकृतिर्यातु सेतराः ॥४२॥
स्वर्णकुण्डलयोराद्या दुग्धस्य दधिरूपता ॥
अविकारिसुवर्णस्य कुण्डलादिस्वरूपता ॥४३॥
विकारिदुग्धदधिता पूर्वरूपात्तु प्रच्युतिः ॥
नैतयोर् भ्रान्तिरूपत्वं प्रमातुः बाह्यभावतः ॥४४॥

(क/७.सप्तमः प्रकारः)

उपादानस्य द्रव्यस्य विशीर्णीभावतः क्वचित् ॥
कार्यम् उत्पद्यते नूत्नं तदेतत्पञ्चधा मतम् ॥४५॥
कणात्मना द्रवात्मना वाथो वाय्वात्मना क्वचित् ॥
निरन्वयविनाशे हि द्रव्यमाकाशतां व्रजेत् ॥४६॥

(क/८.अष्टमः प्रकारः)

तथैव द्रव्यसंस्कारो मूषापूरितभेदतः ॥
लोहादिधातौ मूर्त्यादिभावापत्तिप्रभेदतः ॥४७॥
शिलायां वाकृतेः पत्रे भित्तौ वा तूलिकादिभिः ॥

तथैव पारदस्यापि संस्कारेण हि भस्मता॥४८॥
प्रकारेष्वेषु सर्वेषु ह्यन्यथाभावतातु या॥
न साऽसत्त्वापादिनीर्वा नच भ्रान्तिविभातता॥४९॥
तस्माद्धि वस्तुसत्तायाः प्रभेदास्तु मताः इमे॥

(प्रमातृबहिर्भूतसत्ताप्रकारभेदोपसंहारः)

प्रमातृतो बहिर्भूताः सत्ताः सर्वाः इमाः मताः॥
नातो हि भ्रान्तिरूपत्वं वक्तुं शक्यं कथञ्चन॥५०॥

(इह शंकासमाधाने)

"सर्वं खल्विदं ब्रह्मै"-"तदात्म्यम् इदं"जगत्॥
जडजीवात्मनोर्वा स्यात् कार्यकारणयोरपि॥५१॥
नचोत्पत्तिनाशौ वै आविर्भावतिरोहती॥
यतोंऽगीक्रियते तस्मात् स्वारूढ़शाखच्छेदनम्॥५२॥
कारणारब्धसंघातप्रतीत्योत्पादस्वीकृतौ॥
इति चेन्मैवमेवं स्याद् दृष्टिभेदो नियामकः॥५३॥
ब्रह्मदृष्ट्यातु सर्वं हि सर्वात्मकतयोदितम्॥
रूपनाम्नोः मिथो भेदो लोकदृष्ट्या न किं भवेत्?॥५४॥
सजातीयविजातीयस्वगतद्वैतवर्जिते॥
सजातीयविजातीयस्वगतद्वैतनिर्मितिः॥५५॥
आविर्भावः स्रष्टदृष्ट्या सृष्टिदृष्ट्याक्षगोचरान्॥
अन्यान् वादांश्च बहुलान् क्रोडीकर्तुक्षमैकता॥५६॥

तथाहि

"सर्वाकारस्वरूपेण भविष्यामीति या हरेः ।।
वीक्षा यथा यतो येन तथा प्रादुर्भवत्यजः ।।५७।।
मृदादिभगवद्रूपं घटाद्याकारसंयुतम् ।।
मूलेच्छातस्तथा तस्मिन् प्रादुर्भावो हरेस्तथा ।।५८।।
तिरोभावस्तथैव स्याद् रूपान्तरप्रभेदतः ।।
वृद्धिं विपरिणामश्च तथापक्षयएव च ।।५९।।
उभावैकीकृतौ लोके वृद्ध्यादिभिरुदीरितौ ।।
परिणामाधिक्यतश्च वैजात्यान्न्यूनभावता ।।६०।।
.....
एवं सृष्टिप्रभेदेषु कल्पेषु च तथैव च ।।
प्रकारभेदाः दोषाय न भवन्ति तदिच्छया [११] ।।६१।।
सुबोधिन्यां श्रीमदाचार्यैर् एतद्वै विनिरूपितम् ।।
जिज्ञास्यं परमं तत्त्वं यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ।।६२।।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां दशलीलापरः परः ।।
घटः सन् भासते चापि प्रियश्चेति तदन्वयः ।।६३।।
सतो घटस्य [१] कार्यस्य सत्ता [२] हेतोस्तथापरा ।।
[३] सदाधारो घटो यद्वद् [४] सदाधेयः तथैव च ।।६४।।
सत्त्वेऽपि [५] भगवद्भिन्नोऽस्त्येतादृगन्वयो मतः ।।
व्यतिरेकोऽपि तस्यैव [१] घटरूपात् पटः पृथक् ।।
[२] स्वकारणाद् यथा भिन्नो [३] घटो भिन्नो घटान्तरात् ।।६४।।
[४-५] आविर्भावतिरोभावभिन्नोऽपि ज्ञायते घटः ।।
सर्वस्तुषु चैवं वै दशलीलापरो हरिः [१२] ।।६५।।
"सत्त्वंरजस्तम..."इति कारिकायाः सुबोधिनी ।।
गुणानाञ्च त्रयाणां वै सूत्रतामभणत् स्फुटाम् ।।६६।।
पुरुषाणां बन्धनाय हरिर्हि सूत्ररूपधृक् ।।

इह तावद् हरौ प्राक्तु निर्गुणत्वमपीष्यते॥६७॥
सृष्टिस्थितिलयार्थन्तु गुणोत्पत्तिश्च स्वात्मिका॥
तेषां गुणानां संघातरूपैव सूत्रतोदिता''[१३]॥६८॥
यथा स्वयम्प्रकाशत्वं स्वमायाबद्धता तथा॥
अखण्डाद्वैतरूपस्य शक्तीच्छाभ्यामनेकता॥६९॥

तथोक्तं भागवते

''येन प्रजानामुत आत्मकर्म-
रूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त॥
नारायणो विश्वसृगात्मयोनि:''[१४]
त्रिधा हि तस्मिंश्च भिदापि जाता॥७०॥

''येन' इति प्रजानामपि प्रत्येकं 'आत्मा'=स्वरूपं कर्म रूपं 'अभिधा'=नाम. एतेषां येन कृत्वा भिदां व्यधत्त... 'नारायण:'=नराद् जातानि नाराणि तानि अयनं यस्य यत्रेति तेषु सर्वत्रैव विद्यमानत्वाद् एकेन अंशेन द्वयं न क्रियतइति तदंशे विद्यमानएव भगवान् तावद्भेदहेतु: इति एक: पक्ष:. किञ्च 'विश्वसृक्'=सर्वस्य कर्ता भगवान् सर्वत्र उपादानगोचरापरोक्षज्ञानमेव तावद्भेदहेतु: इति द्वितीय: पक्ष:. 'आत्मयोनि:' इति आत्मैव 'योनि:'=कारणं यस्य, अयं स्वस्मादेव स्वयम् उत्पद्यते. अतो भगवत: कश्चन तादृशो गुणो येन स्वयमेव स्वस्माद् उत्पद्यतइति भिन्नो भवति. एवमेव अयम् अनन्तमूर्ति: जातइति स्वयमेव तावद्रूपो भवतीति एवं तत्त्वतो ज्ञानतश्च हेतुत्रयं जातम्''[१५].

इत्येवमैच्छिकान् भेदानवलम्ब्यान्यवादगा:॥

प्रक्रियाः ब्रह्मवादोक्ताश्चाविर्भावे न बाधिताः ॥७१॥
ब्रह्म चैकं यथानेकभावञ्च भजते तथा॥
आविर्भावस्वभावेऽपि नानात्वं न कुतो भवेत्? ॥७२॥

(ख. अथ प्रमात्रन्तर्गतकालदेशावृत्तिसत्ताप्रकारभेदाः)

प्रमात्रन्तर्गतं सत्त्वं देशकालातिगं मतम्॥७३॥
अन्यथा देशकालौ नो सिद्धचेतां वै कथञ्चन॥
प्रमातृनिष्ठप्रत्ययस्य सत्त्वं तत्र भासते॥७४॥
तस्यानंगीकृतौ नूनं सापि स्यात् स्वपराहता॥

(ख/१.आद्यः प्रकारः)

अतः प्रत्ययद्वैविध्यं क्वचिद् बाह्यार्थगोचरं॥७५॥
क्वचिन्नापीति नो बाह्या तत्सत्ताभ्यान्तरी मता॥
अधुना संगणके चापि गणनौपयिकांगुलिः॥७६॥
सत्त्वमासां स्वतःसिद्धम् अमनोभ्रमभाततः॥

(ख/२.द्वितीयः प्रकारः)

उत्प्रेक्षितस्य सत्यस्य सत्त्वं चाप्यान्तरं मतम्॥७७॥
द्वेधा तदपि सिद्धस्य निर्देशात्मा तथा परं॥
साध्यप्रयोजनकं च स्वान्तर्गोचरमेव तत्॥७८॥

(ख/३.तृतीयः प्रकारः)

यः प्रतीत्यसमुत्पादः सौगतैः स्वीकृतो भृशम्॥
मिथ्यात्वं नहि तस्यापि बुद्धौ भाततया मुहुः॥७९॥
तत्त्वज्ञानानिवर्त्यत्वात् कथं मिथ्या हि तद् भवेत॥

विचारे तत्त्वज्ञानस्य प्रतीत्योत्पादतैव हि॥८०॥
वस्तुयाथार्थ्यावगाहिप्रत्ययस्य तथात्वतः॥
अतस्तस्य भवेद् भेदो द्विधा प्राधान्यभेदतः॥८१॥
क्वचित्तूपाधिप्राधान्यं तथैवोपहितस्य वै॥
प्रमातृत्वं यथा देहोपाधेः प्राधान्यतो मतम्॥८२॥
चैतन्यस्वप्रकाशत्वं प्राधान्यमुपहितस्य हि॥

(ख/४.तुरीयः प्रकारः)

तत्त्वज्ञाननिवर्त्यस्य रजतप्रत्ययस्य च॥८३॥
मिथ्यात्वं शुक्तिसापेक्षं नचेदमन्यथा क्वचित्॥
स्वस्मिन् रजतधीर्नूनं नेति वक्तुं न शक्यते॥८४॥
धिवृत्तिसत्ता स्वस्मिन् हि नान्यथाभवितुं क्षमा॥
साधिष्ठानकभ्रान्तौ यथेदं कल्प्यते तथा॥८५॥
एतादृशे भ्रमे दृष्टं सादृश्यं स्याद् नियामकम्॥

(ख/५.पञ्चमः प्रकारः)

तथा न निरधिष्ठाने भ्रमे तत् स्याद् नियामकम्॥८६॥
तथा पूर्वानुभूतत्वं चाप्यस्मिन् नियतं मतम्॥
भूतप्रेतपिशाचादिभ्रान्तिर्दृष्टसमा न वै॥८७॥
निरधिष्ठाने भ्रमेऽदृष्टपूर्वोऽप्यनुभूयते॥
प्रत्ययाभ्यन्तरत्वेन न देशादिवर्तिता॥८८॥
सापेक्षमनृतत्वन्तु तस्मात्तत्रोपचर्यते॥
प्रमातरि तदसत्त्वे भ्रमवार्ता भ्रमात्मिका॥८९॥
निरधिष्ठानकभ्रमे प्रत्ययश्चान्तरो हि सन्॥
सदन्वयनिषेधात्तु मायिके विषये खलु॥९०॥

श्रीमदाचार्यवाणी[सुबो.२।९।३५]तो विरुद्धं प्रतिपादनम्॥
मन्ये नात्रविरोधोऽस्ति मायया बाह्यभासने॥९१॥
बुद्धिवृत्तिगता यार्थाकारता सातु तात्त्विकी॥
''भूमिरापोऽनलोवायुखंमनोबुद्धि'' [१६] वाक्यतः॥९२॥
बुद्धिस्तु भगवद्रूपा शास्त्रसिद्धैव सर्वथा॥
ईशशक्त्याऽविद्यया च विषयाकारनिर्मितिः॥९३॥
नहि मिथ्याभासरूपा वक्तुं शक्या कथञ्चन॥
अतो बुद्धिगताकारो ह्यमृषा बाह्यधीर्मृषा॥९४॥

(ख/६.षष्ठः प्रकारः)

तत्रोत्सर्गाद् द्वयोरत्र भिन्नयोः दृश्यश्राव्ययोः॥९५॥
इतरेतरसंकीर्णतया चैकत्वधीः प्रमा॥
अन्तःकरणसामग्रीदोषाद् जाता सती क्वचित्॥९६॥
न तत्त्वज्ञानबाध्या सा किन्तु सामग्रीशोधनात्॥
ततश्चाभ्यान्तरा सत्ता मन्तव्यैव बुधैः खलु॥९७॥

(एतन्निष्कर्षः)

एकमेवाद्वितीयस्य बहुधाभवनेन हि॥
सत्ता चानेकभावात्वमापन्नाः सुप्रसिध्यति॥९८॥
मतिरन्यख्यातिवादे भ्रान्तिभाता भवेन्नवै॥
बाह्यार्थविषयादन्यो विषयो भासते मतौ॥९९॥
तदन्यख्यातिवादस्य न मिथ्याख्यातिवादता॥
भ्रमात् प्रतीयमानस्य बाह्यालम्बनशून्यता॥१००॥
सापेक्षत्वेनानृतत्वं बुद्धिवृत्तिप्रभेदतः॥
अविद्याशक्तिसञ्जाता तस्याश्चेश्वरशक्तिता॥१०१॥

कार्यकारणयोरेवं सत्तातु पारमार्थिकी॥
अतो वै नासतो भावो नाभावो विद्यते सतः॥१०२॥
आविर्भावतिरोभावौ सतो द्रव्यस्य सम्मतौ॥
तस्मादेवान्तरस्यात्र प्रत्ययार्थस्य भावता॥१०३॥
अन्यथा भ्रान्तिधीश्चापि न भवेद् नात्र संशयः॥
भ्रान्त्यभावेतु विषयाणामनृतत्वं कथं भवेत्?॥१०४॥

(उपसंहारः)

स्वकीयाकरग्रन्थेषु सत्ताभेदास्त्विमे क्वचित्॥
यद्यपि नोपलभ्यन्ते तथापि तर्किताः मया॥१०५॥
''विद्याविद्ये हरेः शक्ती'' निबन्धोक्तावलम्बनात्॥
सुबोधिन्याञ्चान्यख्यातेरंगीकारात् च सर्वथा॥१०६॥
अख्यातिरन्यथाख्यातिरसत्ख्यातिस्तथा परा॥
आत्मख्यातिस्तथा मिथ्याख्यातिस्त्वेता निराकृताः॥१०७॥

तथाहि

''''विपर्यासः' संस्कारप्राबल्यात् तेजः तदनुगुणमेव धर्मं प्रकाशयति. 'अथ' इति एकस्फुरणनियामकत्वाय. विपर्यासो= भिन्नार्थप्रतिपादकः, क्रियाज्ञानयोश्च भिन्नविषयत्वम्. अनेन अन्यख्यातिरेव विद्धान्तः इति उक्तम्. अन्यथात्वे यथार्थत्वं(प्रमातृबाह्यदेशकालावस्थितार्थविषयकत्वेन) ...बुद्धेः तत्त्वरूपत्वाद् न आत्मख्यातिः. शब्दसंस्कारयोः पदार्थमात्रापेक्षित्वाद् न देशकालवैशिष्ट्यं नियामकम्. 'रजतम् अनुभवामि' इति अनुव्यवसायाद् न प्रमुष्टतत्तारूपा स्मृतिः, एकज्ञानरूपत्वात् च न ज्ञानद्वयम्. संस्कारप्राबल्याद् न अनिर्वचनीयरजतापेक्षा.

अतएव न असत्ख्यातिः. तस्माद् अन्यख्यातिरेव सर्वजनीना''[१७].

एतस्याप्यनुसन्धाने श्रीमदाचार्यसम्मतेः॥
अन्यख्यात्यवभातानां विषयाणां हि भावता॥१०८॥
प्रमातुर्बाह्यदेशादेर्निरपेक्षैव सा मता॥
नन्विदं रजतं तावदिदमंशेऽपि न प्रमा॥१०९॥
योक्ता ततो विरुद्धेयं वर्णनेहेति चेत् शृणु॥
अत्र तावदिन्तायारान्तरत्वाद् न बाह्यता॥११०॥
इत्येतावद्धि तात्पर्यं न निषेधोऽस्त्यबाह्यगः॥
अतो हि युज्यते तावदान्तरस्यतु भावता॥१११॥
एवमाचार्याभिमत्या न विरोधोऽत्र कश्चन॥
एकाकिन्याः हि सत्ताया: बहुधा सम्भवस्य यः॥११२॥
श्रीमदाचार्यकृपयैव प्रकारो वर्णितो मया॥
यद्ययुक्तोऽथ युक्तो वा सुविमर्शाय नान्यथा॥११३॥
विषयासक्तस्य हि कुतः त्वत्प्रमानुभवार्हता!॥
कामये सततं भूयाद् नाथ! भ्रान्तिस् तवैव मे॥११४॥
अहन्ताममताभ्रान्ती ब्रह्मसम्बन्धतो त्वयि॥
समर्पिते मे तन्न्यायात् त्वद्भ्रमो यातु ब्रह्मताम्!॥११५॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण विरचितम्
एकस्याद्वितीयस्य बहुभवनप्रकारनिरूपणम्
सम्पूर्णताम् अगात्

(चतुःसप्ततिद्विसहस्रे वैक्रमे वत्सरे शुभे॥
ग्रन्थोऽयं नवरात्र्यां हि निर्मितो बोधशुद्धये॥)

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.भग.गीता.२।१६

२.छान्दो.उप.६।२।२-३

३.तैत्ति.उप.२।१-५

४.बृह.उप.१।४।७

५.भाग.पुरा.११।२४।२-४

६भाग.पुरा.११।९।१७,१८

७.बृह.उप.४।३।३०

८.बृह.उप.१।६।१-३

९.केनोप.२।३

१०.छान्दो.उप.६।१।४

११.त.दी.नि.२।१४१-१४६

१२.द्रष्ट.सुबो.२।९।३५

१३.द्रष्ट.सुबो.२।५।१९

१४.भाग.पुरा.३।५।९

१५.सुबो.३।५।९

१६.भग.गीता.७।४

१७.सुबो.३।२६।३०

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ अविद्यापञ्चपर्वाध्यासदोषोपशमप्रक्रिया ॥

(मंगलाचरणोपक्रमौ)

नत्वा भक्त्याहम् आचार्यान् स्वगेहेऽवस्थितान् प्रभून् ॥
विद्यागुरूंश्चादरेण वक्तुं किञ्चिद् इहोत्सहे ॥१॥
शास्त्रार्थे श्रीमदाचार्यैः विद्याविद्ये निरूपिते ॥
पञ्चपर्वात्मिके, तद्वद् दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः ॥२॥
स्वसिद्धान्तरहस्ये च तत्सम्बन्धविमर्शनात् ॥
ग्रन्थयोरुभयोरेकवाक्यत्वं सिद्ध्यति दृढम् ॥३॥
पञ्चपर्वाऽविद्ययातु पञ्चधाध्याससम्भवः ॥
तेषान्तु दोषरूपत्वमुत्तरत्र निरूपितम् ॥४॥
भगवत्यर्पणादेव सर्वदोषनिराकृतिः ॥
तत्सेवौपयिका चातः वृद्धिर्भक्तेस्ततः परा ॥५॥
सिद्धान्तमुक्तावल्युक्ता भक्तिवर्धिनीवर्णिता ॥
उपदिष्टा प्रक्रियेयं ग्रन्थेष्वेतेषु दर्शिता ॥६॥
अविद्ययैवाध्यासानां दोषरूपत्वमिष्यते ॥
विद्यापि दोषजनिका हीशावास्यश्रुतेर्मता ॥७॥

“ अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविमुपासते ॥
ततो भूयइव तमो य उ विद्यायां रताः ॥८॥
.....
विद्याञ्चाविद्याञ्च यस् तद् वेदोभयं सह ॥
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ” [१] ॥९॥

“ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ॥

द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥१०॥
धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थम् इति चानघ ! ॥
दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्मम् उद्वहतां धुरम् ॥११॥

.....

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ॥
धातूषूद्धव ! कल्प्यन्ते एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥१२॥
देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ! ॥
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥१३॥

.....

क्वचिद् गुणोऽपि दोषः स्याद् दोषोऽपि विधिना गुणः ॥
गुणदोषार्थनियमस् तद्विदामेव बाधते ॥१४॥

.....

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते ह्यहम् ॥
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥१५॥

.....[२]

इत्येवमादिवचनैः ज्ञानमार्गे हि बाधकाः ॥
कर्ममार्गे साधकास्ते भक्तावप्यपर्णात् तथा ॥१६॥
पञ्चाध्यासास्तदानन्दरतौ स्युः फलदायकाः ॥
सिद्धान्तस्य रहस्येऽतः सर्वदोषनिवारणम् ॥१७॥
समर्पणाद् विनिर्दिष्टा भक्तिमार्गीयप्रक्रिया ॥
अतोऽत्रतु मिथस्तेषामेकवाक्यत्ववर्णनम् ॥१८॥

(प्रतिपाद्यप्रक्रियोक्तिः)

[१]प्राणाध्यासोत्थदोषाः ये सहजास्ते ह्युदाहृताः ॥
"जीवु प्राणधारणे"ऽतो चिति जीवत्वसाधकाः ॥१९॥
भक्त्याख्यविद्ययेशस्य प्राणवद् धारणे हृदि ॥
प्राणाध्यासशैथिल्यं तस्मै सर्वसमर्पणात् ॥२०॥

[२]तैस्तैर् अर्थैरिन्द्रियाणां संयोगोऽध्यासमूलकः ॥
लोकवेदोक्तदोषात्मा वैराग्यविद्यया क्षतिः ॥२१॥
वैराग्येन हि विषयासक्तेर्निःसारणं मतम् ॥
कामक्रोधादिशत्रूणां दुःखदानां निराकृतिः ॥२२॥

[३]ये हि संस्पर्शजा दोषास्ते देहाध्यासमूलकाः ॥
तपोरूपविद्ययैव देहात्माभेदधीर्भवेत् ॥२३॥
दैहिकक्लेशसहनात्तु देहाध्यासोऽपगच्छति ॥

[४]तत्तद्देशस्थितेर्मोहाद् देशोत्था लोकवेदयोः ॥२४॥
निरूपितास्तु ये दोषास्त्यागविद्यानिवारिताः ॥
ममतास्पदेशानां बाह्यत्यागात्मिका यतः ॥२५॥
सांख्यविद्या समाख्याता नित्यानित्यविवेकजाः ॥

[५]विस्मृतिर्वा स्वरूपस्य स्वरूपाज्ञानमेव वा ॥२६॥
तदुत्थितास्तु ये दोषास्तेषां स्याद् योगविद्यया ॥
प्रक्षालनन्तु चित्तस्य वृत्तीनां हि निरोधतः ॥२७॥
स्वरूपस्यानुसन्धानात् स्वस्वरूपे सदा स्थितिः ॥

(निष्कर्षः)

देहेन्द्रियान्तःकरणादावहम्बुद्धिसमुद्भवः ॥
भोक्तुर्यो स्वीयभोग्ये हि भावस्तस्य समर्पणात् ॥२८॥
सर्वदोषनिवृत्तिर्या चोपदिष्टा तया पुनः ॥
भगवत्सेवने दोषा बाधकाः न भवन्ति ते ॥२९॥
सेवया भक्तिवर्धिन्युक्तरीत्या रुचिः सदा ॥
प्रेमासक्तिव्यसनभावैः स्वयं वृद्धिं गमिष्यति ॥३०॥
भक्तेर्व्यसनसम्पत्तौ सर्वत्रैव तदीक्षणात् ॥

स्वदोषेष्वपि तल्लीलाबोधान्निर्दुष्टता भवेत्॥३१॥
तया ब्रह्मात्मकत्वन्तु सर्वं सम्पद्यते यथा॥
तादृशी प्रक्रिया काचिद् रुचिरेयं निरूपिता॥३२॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण विरचिता
अविद्यापञ्चपर्वाध्यासदोषोपशमप्रक्रिया
सम्पूर्णताम् अगात्

(चतु:सप्ततिद्विसहस्रे वैक्रमे वत्सरे शुभे॥
द्वाविंशतिरियं तावद् नवरात्र्यां हि निर्मिता॥)

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.ईशा.उप.९-११
२.भाग.पुरा.११।२१।३-४३

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ श्रुतिगीतासूक्ष्मटीकाकारिकातात्पर्यनिरूपणम् ॥

(मंगलाचरणम्)

एकमेवाद्वितीयं चापरिच्छिन्नं हि सर्वथा ॥
सर्वनामैकनीडं तद् ब्रह्म कृष्णात्मकं श्रये ॥१॥
विधानैरभिधानैश्च विकल्प्यापोहनैरपि ॥
शब्दभेदमुपाश्रित्य भिन्नं चाभिन्नमेव च ॥२॥
कर्मशब्दैः क्रियारूपं मानं तज्ज्ञानशब्दतः ॥
प्रियं स्तुत्यं स्तवैः यत् तत् सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥३॥
वेदस्तुत्याः सूक्ष्मटीकातात्पर्यावगमाय वै ॥
श्रुतीनां संग्रहं कुर्वे ध्यात्वाचार्यपदाम्बुजम् ॥४॥

(उपक्रमः)

"**अष्टत्रिंशे श्रुतीनां हि यथा वाच्यं बृहद् भवेत् ॥**
तदर्थं पूर्वपक्षादिसिद्धान्तफलम् ईर्यते" [१] ॥५॥
परीक्षिद्वचनं पूर्वपक्षोत्थापकमेव हि ॥
सिद्धान्तस्य समासोक्तिः व्याख्यायां पूर्वसूचिता ॥६॥
"**ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥**
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे" [२] ॥७॥
कारिकायाः सुबोधिन्यां समाधानं जगुः स्वयम् ॥
आचार्यचरणाः खण्डाखण्डाद्वैतविवक्षया ॥८॥
"**अनन्तगुणपूर्णो हि हरिब्रह्मश्रुतिस्तथा ॥**

फलप्रमेयमानत्वं सच्चिदानन्दतां गतम्'' [३] ॥९॥
अवाच्यं मूलरूपेण सृष्टबुद्ध्यादिवाच्यता॥
लोकवेदपदैः शक्या लीलायाम् ऐच्छिकी सदा॥१०॥
पत्रावलम्बनेऽप्येतद् यथोक्तं तदिहोच्यते॥
''ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न वक्तव्यैव कुत्रचिद्॥११॥
वस्तुतो ब्रह्म सर्वंहि व्यवहारस्तु लोकतः'' [४]॥
ब्रह्मणोऽव्यवहार्यस्य व्यवहार्यत्वसिद्धये॥१२॥
धर्मिणि सच्चिदानन्दे प्राक्तु धर्मविभाजनम्॥
सत्ता चैतन्यमानन्त्यं तत्र धर्मतयोदितम्॥१३॥
सदंशे रूपप्राकट्यं चिदंशे नामधर्मिता॥
अन्योन्यसहकारेण स्वस्वकार्येषु कारिता॥१४॥
एतयो रूपनाम्नोर्वै मूलकर्मप्रसाधिता॥
अव्यक्तरूपप्रकृतौ रजस्सत्त्वतमांसि च॥१५॥
अक्षुब्धगुणसाम्यात्तु क्षोभात्तेषु विकारिता॥
प्रकृतेर्विकारहेतुत्वाद् महदादिक्रमेण हि॥१६॥
''बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानाम् असृजत् प्रभुः॥
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च'' [५]॥१७॥
औपाधिकावबोधार्थं जीवचैतन्ययोगिनाम्॥
मात्राणामुपकारित्वं सदंशे भूतहेतुता॥१८॥
रूपनाम्नोस्ततस्त्वेवम् इतरेतरयोगिता॥
चिदंशबुद्धौ कार्यत्वं बाह्यरूपकृतं हि तत्॥१९॥
ज्ञाप्यत्वञ्चापि रूपाणां नामहेतुकृतं मतम्॥
तेनेह बोधो जीवेषु क्रियाज्ञानोभयात्मकः॥२०॥
मनसो ह्युभयरूपत्वं सम्बन्धाधायकं भवेत्॥
शब्दतन्मात्रश्रवणे बुद्धौ नाम्नां समुद्भवः॥२१॥

ततो वेदादिशब्दानामपि बुद्धौ विधारणा॥
एवं त्रिगुणवृत्त्यापि निर्गुणे श्रुतिचारणम्॥२२॥
विषयस्येह नैर्गुण्यं त्रैगुण्यं विषयिण्यपि॥
अतोऽमेयस्य मानानि श्रुतिरूपाणि सर्वथा॥२३॥
अवाच्यवाचकान्येव नामानि सकलान्यपि॥
प्रक्रियायाश्च प्रामाण्ये जनलोककथोदिता॥२४॥

"यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम्॥
स्वायम्भुव! ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत् पुरा॥२५॥
तत्रस्थानां मानसानां मुनीनाम् ऊर्ध्वरेतसाम्॥
ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते"[६]॥२६॥

प्रश्नप्रवचने तत्र प्रक्रियेयं निरूपिता॥॥

तथाहि :

"स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः॥२७॥
तदन्ते बोधयाञ्चक्रुः तल्लिंगैः श्रुतयः परम्॥
यथा शयानं सम्राजं बन्दिनस्तत्पराक्रमैः॥२८॥
प्रत्यूषेऽभेत्य सुश्लोकैः बोधयन्त्यनुजीविनः"[७]॥

सर्वज्ञसर्वशक्तेर्हि प्रमेयस्य प्रमाणतः॥२९॥
समुद्बोधनम् एतद्धि तच्छ्रुतावेव दर्शितम्॥
तथाहि :

"नैव इह किञ्चन अग्रे आसीद् मृत्युना इदम् आवृतम् आसीद् अशनायया. अशनाया हि मृत्युः. तद् मनो अकुरुत 'आत्मन्वी स्याम्' इति सो अकामयत 'द्वितीयो मे आत्मा जायेत' इति स मनसा वाचं मिथुनं समभवद्. अशनायाः मृत्युः, तद् यद्रेतः आसीत् स संवत्सरो अभवत्. न ह पुरा ततः संवत्सरः आस. तम् एतावन्तं कालम् अबिभः.

यावान् संवत्सरः तम् एतावतः कालस्य परस्ताद् असृजत. तं जातम् अभिव्याददात्. स 'भाण्' अकरोत् सैव वाग् अभवत्. स ऐक्षत् 'यदि इमम् अंस्ये कनीयो अन्नं करिष्ये' इति स तदा वाचा तेन आत्मना इमं सर्वम् असृजत. यदिदं किञ्च ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांसि यज्ञान् प्रजाः पशून्''[८].

बृहदारण्यके चैषा प्रक्रिया समुदाहृता॥३०॥
महाशनाया प्रलयः स्वस्मिन् सृष्टस्य स्वात्मनि॥
द्रष्टरि सर्वदृश्यस्यान्तःस्थितिर्योगनिद्रया॥३१॥
"**अत्ता चराचरग्रहणात्**"[९]सूत्रोक्ता मृत्युरूपता॥
पुनर्जागरणे पूर्वं स्वमनोजागरो मतः॥३२॥
नैकाकी मनो रमते वाण्या साकन्तु मैथुनात्॥
आविर्भावो नामसृष्टेः तया रूपप्रबोधनम्॥३३॥
प्रधानरूपाद् अव्यक्ताद् आकाशमहतोः[१०] सृजिः॥
रूपात्मिका ततश्चैवं साधितेऽवाच्यवाच्यते॥३४॥
उद्बोधश्चात्मनश्चैवमात्मना समपद्यत॥
ब्रह्मवादतिरस्कारोऽन्यथाऽन्येन प्रबोधने॥३५॥
सिद्धान्तमुक्तावल्यां तत्कण्ठेनोक्तमेव हि॥
"**अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः॥३६॥**
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा॥
तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम्"[११]॥३७॥
ब्रह्मवादप्रक्रियान्ते संक्षिप्योक्ता स्तुतावपि॥
तत्पार्श्वसंस्थिताभिस्तु श्रुतिभिः सृष्ट्युपक्रमे॥३८॥
तथाहि :
"[क]**योऽस्योत्प्रेक्षक** [ख]**आदिमध्यनिधनो**

[ग]योऽव्यक्तजीवेश्वरो
[घ]यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य [ङ]ऋषिणा
चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥
[च]यं सम्पद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः
कुलायं यथा
[छ]तं कैवल्यनिरस्तयोनिम् [ज]अभयं
ध्यायेद् अजस्रं हरिम्'' [१२] ॥३९॥

संक्षिप्ते ब्रह्मवादेऽस्मिन् ब्रह्म तद् बहुधोदितम् ॥
तस्य प्रागनुसन्धानं नूनं बोधोपकारि वै ॥४०॥
तथाहि :
[क]दृश्यमानस्य जगतः आद्यो द्रष्टा सएव हि ॥४१॥

'' अग्रे आसीद् ब्रह्म वेदमवेदात्मानमेव तत् ॥
'ब्रह्मास्मी'त्यभवत् सर्वम् अतो दृश्याखिलं जगत्'' [१३] ॥४२॥
[ख]जगतश्चादिमध्यान्तरूपं चापि तदेव हि ॥
'' सर्वं पुरुषएवेदं भूतं भाव्यमप्युत ॥४३॥
उतामृतत्वस्येशान यदन्नेनातिरोहति'' [१४] ॥
[ग]जडजीवेशरूपत्वं त्रैविध्यं चैकब्रह्मणः ॥४४॥
तस्य श्रुत्येकगम्यत्वात् स्वीकार्यं वेदवादिभिः ॥
तथाहि :
'' क्षरं प्रधानम् अमृताक्षरं हरः क्षरात्मानौ ईशते देवएकः... ॥
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मम्
एतत्'' [१५] ॥४५॥
[घ]प्रविश्यान्तर्नियमनं स्वसृष्टानां तथा मतम् ॥
'' तत् सृष्ट्वानुविशत् सर्वं तेन जातमिदं हि यत्'' [१६] ॥४६॥
बृहदारण्यकोक्तापि पुरःसृष्टिस्तथा मता ॥

''पुरश्चक्रे तु द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः॥४७॥
पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत्''[१७]॥
अन्तर्नियामकत्वं च ''यः पृथिव्यादि''नोदितम्॥४८॥
''य आत्मनी''त्यन्तं यावत् तत्रान्तर्यामिब्राह्मणे॥
ङबाह्यं नियामकं रूपं शाब्दं वेदादिकं मतम्॥४९॥
तत् श्वेताश्वतराद्युक्तं पुराणस्मृतिभिस्तथा॥
''यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च
प्रहिणोति तस्मै॥
तं ह देवम् आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुः वै शरणम्
अहं प्रपद्ये''[१८]॥५०॥
''तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यानि अपश्यन् तानि त्रेतायां बहुधा तानि-तानि आचरथ नियतः सत्यकामा एष वः पन्था सुकृतस्य लोके[१९]॥५१॥
चअंशिन्यंशस्थितिस्तत्र निजांशानां द्विधा मता॥
ज्ञानाज्ञानप्रभेदाभ्यां मोक्षबन्धकरी इमे॥५२॥
इहामुत्रान्यदा जाग्रन्नपि सुप्ताविशेषवत्॥
तदुक्तं :
''अन्यत्र धर्माद् अन्यत्राधर्माद् अस्मात् कृताकृतात्॥५३॥
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत् तत् पश्यसि तद् वद॥
सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति॥५४॥
यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥
एतद्धचेव अक्षरं ब्रह्म एतद्धचेव अक्षरं परम्॥५५॥
एतद्धचेव अक्षरं ज्ञात्वा यो यद् इच्छति तस्य तत्॥
एतद् आलम्बनं श्रेष्ठम् एतद् आलम्बनं परम्॥५६॥

एतद् आलम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते'' [२०] ॥

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारम् अनेकरूपम्॥५७॥

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः'' [२१] ॥

[छ]उत्पत्तौ पालने चैवं विश्वसंहरणे तथा॥

न तस्य ईशो हेतुर्वा कैवल्यादेव तस्य हि॥५८॥

''न तस्य कश्चित् पतिः अस्ति लोके नच ईशिता नैव च तस्य लिंगम्॥

स कारणं कारणाधिपाधिपो नच अस्य काश्चिद् जनिता नच अधिपः'' [२२] ॥

[ज]भयाभावैकहेतुं तं नर्ते तं चाभयं क्वचित्॥

''तमेव विदित्वा अतिमृत्युम् एति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय... यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः तदा देवम् अविज्ञाय दुःखस्य अन्तो भविष्यन्ति'' [२३] ॥५९॥

श्रुतिगीतोपसंहारे ब्रह्मवादनिरूपणम्॥

संक्षिप्योक्तं तदारम्भेऽप्यवधार्यं बुभुत्सुभिः॥६०॥

गायन्त्येतादृशं ब्रह्मवादं हि श्रुतयः स्तवैः॥

श्रावयन्त्यस्तमात्मानं श्राव्यलीलोद्भवाय हि॥६१॥

(इहापराशंकासमाधाने)

इदमाशंक्यते चेह वेदो हि द्विविधो मतः॥

पूर्वकाण्डे कर्मविधिः द्वितीये ब्रह्मवर्णनम्॥६२॥

स्तुतिस्तयोरंगतया न प्राधान्यमतः स्तुतेः॥

शौनकोक्तप्रकारेषु मन्त्राणां बहुभेदतः॥६३॥

न सर्वासां श्रुतीनां वै ब्रह्मस्तुत्यर्थता मता॥

''स्तुतिः प्रशंसा निन्दा च संशयः परिदेवना॥६४॥

स्पृहाशीः कत्थना याच्ञा प्रश्नः प्रैषः प्रवल्हिका।।
नियोगश्चानुयोगश्च श्लाघा विलपितं च यत्।।६५।।
आचिख्यासाथ संलापः पवित्राख्यानमेव च।।
आहनस्या नमस्कारः प्रतिराधस्तथैव च।।६७।।
संकल्पश्च प्रलापश्च प्रतिवाक्यं तथैव च।।
प्रतिषेधोपदेशौ च प्रमादापह्नवौ च ह।।६८।।
उपप्रैषश्च यः प्रोक्तः संज्वरो यश्च विस्मयः।।
आक्रोशोऽभिष्टवश्चैव क्षेपः शापस्तथैव च।।६९।।
उपसर्गो निपातश्च नाम चाख्यातमित्यपि।।
भूतं भव्यं भविष्यं च पुमान् स्त्री च नपुंसकम्।।७०।।
एवं प्रकृतयो मन्त्राः सर्ववेदेषु सर्वशः''[२४]।।।

मन्त्रप्रभेदानविलक्ष्य चैतान्
सर्वश्रुतीनां स्तुतिरूपताकथा।।
मन्तुं न योग्या श्रुतिविद्भिरत्र
गौण्योपपत्तौतु प्रमाणहानिः।।७१।।
प्रत्यक्षदृष्टात्तु विरुद्धवाक्ये
गौणश्च शब्दोऽपि भवेन्नु कल्प्यः।।
श्रुत्येकगम्येतु तथार्थकल्पने
प्रामाण्यसंन्यास वरः श्रुतीनाम्।।७२।।
तदेतदाक्षेपसमाधानं :

''ब्रह्म अयं वाचः परमे व्योम''[२५], **''सर्वे वेदाः यत्पदम् आमनन्ति''**[२६], **''सर्वे वेदाः यत्र एकं भवन्ति''**[२७].

इत्येवमादिवचनैः मानमेयस्वरूपयोः।।
वेदब्रह्मणोरैक्याद् मूलतो न भिदा मता।।७३।।

लीलयैच्छिकभेदस्तु सृष्टिरूपेण योऽभवत्॥
द्विविधं रूपमुभयोस्ततो वेद्यं यथायथम्॥७४॥
वेदस्तुतिः सृष्टिपूर्वरूपब्रह्मस्तुतिः मता॥
''सर्वाणि रूपाणि विभज्य धीरो॥
नामानि कृत्वा अभिवदन् यद् आस्ते''[२८]॥७५॥
सृष्ट्यूर्ध्वं तत्र मन्त्राणां बाहुविध्यं न दोषभाग्॥
अन्यथातु **''यतो वाचो निवर्तन्ते''**[२९] इति श्रुतेः॥७६॥
''तन्त्वौपनिषदं पुरुषं''श्रुत्या[३०] नूनं विरुद्धता॥
एकस्मादेव बीजात्तु पर्णपुष्पाद्यनन्तता॥७७॥
अव्यक्ता नहि चेत्तस्मिन् व्यक्तीभावः कुतस्ततः॥७६॥
रूपनामकर्मणां चानन्त्यं लीलाप्रदर्शितम्॥
स्वरूपेऽव्यक्तसद्भावो न कुतस्तत्र शक्यते॥७७॥
किञ्चेह शौनकोक्तं हि सावधानधिया श्रुणु॥
येन संशयसंच्छेदः कुतः शक्यो न सर्वथा?॥७८॥
''स्तुवन्तं वेद सर्वोऽयम् 'अर्थयत्येष माम्'इति॥
स्तौतीत्यर्थं ब्रुवन्तं च सार्थं 'माम् एष पश्यति'॥७९॥
स्तुवद्भिर्वा ब्रुवद्भिर्वा ऋषिभिः तत्त्वदर्शिभिः॥
भवत्युभयमेवोक्तम् उभयं ह्यर्थतः समम्''[३१]॥८०॥
''वेदा यथा मूर्तिधरास् त्रिपृष्ठ''[३२]इति न्यायतः॥
शब्दरूपश्रुतीनाञ्च ह्यास्ते दैविकविग्रहः॥८१॥
स्वीकार्यमित्ययश्यं हि स्तुतौ नातो विरुद्धता॥
अतएवोक्तमाचार्यैः सुबोधिन्यां विचक्षणैः॥८२॥
''काव्यवद् रूपकोक्तौ हि स्पष्टोऽप्यर्थो भवेद् यदि॥
कथनं नोचितञ्चैवं श्रीमद्भागवते पुनः''[३३]॥८३॥
प्रामाण्यं महदेतद्धि सर्वसन्देहवारणात्॥

सृष्टिस्त्वियं श्रुतौ चापि वागुपन्यासपूर्विका॥८४॥
वर्णिता तत्र वाक्कृत्यं स्पष्टं नोपलभामहे॥
वेदसन्देह गीतातो गीतासन्देह सूत्रतः॥८५॥
ब्रह्मसूत्रगतः सोऽपि वार्यो भागवतेन हि॥

तथाहि :

''प्रजापतिः अकामयत प्रजायेय इति... तस्य चित्तिः स्रुग् आसीत् चित्तम् आज्यम्. तस्य एतावत्येव वाग् आसीत्... सो अताम्यत् स 'भूः' इति व्याहरत् स भूमिम् असृजत्... स 'भुवः' इति व्याहरत् सो अन्तरिक्षम् असृजत्... स 'सुवः' इति व्याहरत् स दिवम् असृजत्'' [३४].

''अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद् अन्नसम्भवो यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः कर्म ब्रह्मोद्भवं ब्रह्म अक्षरसमुद्भवं तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्'' [३५].

''शब्दइति चेद् न अतः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां (अणुभा. : 'अतः'=शब्दात् प्रभवात् शब्दोक्तपदार्थानां वेदोक्ताः सर्वएव पदार्थाः आधिदैविकाएव पुरुषावयवभूताः, सर्वानुकारित्वाद् भगवतः)'' [३६].

''यो अविद्यया अनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या, निद्राम् उवाह जठरीकृतलोकयात्रो, अन्तर्जले अहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन्, यन्नाभिपद्मभवनाद् अहम् आसम् ईड्य!, लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण, तस्मै नमस्ते उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्-नलिनेक्षणाय'' [३७].

उत्तरोत्तरमानैस्तु पूर्वपूर्वस्फुटार्थता ॥८६॥
सुशक्या ह्यवगन्तुं या तथास्यास्तु स्तुतेरपि ॥
आतश्चाध्यात्मिकास्वेवं नामरूपस्वभावतः ॥८७॥
सर्वासु स्तुतिरूपत्वं यत्तच्छंक्यं न कर्हिचित् ॥
श्रुतीनामधिदैवीभिः सर्वाभिः कारिता स्तुतिः ॥८८॥
शंकिता गुणवृत्तित्वाद् निर्गुणे ब्रह्मणि कथम् ॥
श्रुतीनां वाचकत्वं वै गुणजानां कथं भवेत् ? ॥८९॥
इत्येतस्याः हि शंकायाः समाधानं विधीयते ॥
ब्रह्मणो यत्तु नैर्गुण्यं गुणातीतया मतम् ॥९०॥
रजस्सत्त्वतमोरूप-गुणानां तत्र चोद्भवात् ॥
ब्रह्मात्मकत्वं तेषां हि न ब्रह्म त्रिगुणात्मकम् ॥९१॥
तथोक्तं :

''पुरुषएव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यं... एतावान् अस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पुरूषः, पादो अस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्य अमृतं दिवि, त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुषः, पादो अस्य इह अभवत् पुनः[३८]''.

गीतायामप्यतो भगवान् चकारेदं स्फुटं पुनः ॥

''मयाध्यक्षेण प्रकृतिः''[३९], ''प्रकृतिं विद्धि परां''[४०] ॥९२॥

''प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि''[४१] ॥

''कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिर्''[४२] इत्यपि ॥९३॥

''ये चैव सात्त्विका भावाः राजसा तामसाश्च ये ॥
मत्तएवेति तान् विद्धि नत्वहं तेषु ते मयि''[४३] ॥९४॥

न गुणानामभावोऽतो ब्रह्मण्यात्यन्तिको मतः ॥
गुणेषु ब्रह्मणो नूनं परिच्छेदो निषिध्यते ॥९५॥
शब्दरूपश्रुतीनां हि व्यक्तिस्तद्वाच्यतापिच ॥

गुणेषु गुणवृत्तित्वं लीलया निर्गुणेऽपि च॥९६॥
अतो नानुपपत्तिर्हि प्रश्ने वा तत्समाहतौ॥
इत्येवं श्रुतिगीतोक्तं श्रुत्यापि संगतं मतम्॥९७॥
श्रुतीनां तं स्तुवन्तीनां दैवीनां नामशब्दतः॥
आनुरूप्यं निरूप्यैवं तत्तद्योजनया पुनः॥९८॥
तत्कृपालब्धमतिना तत्कृपैकार्थिना मया॥
उपक्रमोपसंहारविमर्शादेकवाक्यता॥९९॥
निरूपिता श्रुतिस्तुत्याः सूक्ष्मटीकाविचिन्तनात्॥
क्षमन्तु श्रीमदाचार्यारन्यथाचिन्तितं हि चेत्॥१००॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
श्रुतिगीतासूक्ष्मटीकाकारिकातात्पर्यनिरूपणं
सम्पूर्णम्

उद्धृतवचनसन्दर्भः

१.सुबो.कारि.१०।८४।८

२.भाग.पुरा.१०।८४।१

३.सुबो.कारि.१०।८४।५-६

४.पत्रा.३

५.भाग.पुरा.१०।८४।२

६.भाग.पुरा.१०।८४।८ - १०

७.भाग.पुरा.१०।८४।१२ - १३

८.बृह.उप.१।२।१-५

९.ब्रह्म.सू.१।२।३।९

१०.द्रष्ट.तैत्ति.उप.२।१

११.सि.मु.४ - ५

१२.भाग.पुरा.१०।८४।५०

१३.बृह.उप.१।४।१०

१४.ऋक्.संहि.१०।९०।२

१५.श्वेता.उप.१।१० - १२

१६.तैत्ति.उप.२।६

१७.बृह.उप.२।५।१८

१८.श्वेता.उप.६।१८

१९.मुण्ड.उप.१।२।१

२०.कठो.उप.१।२।१४ - १७

२१.श्वेता.उप.५।१३

२२.श्वेता.उप.६।९

२३.श्वेता.उप.६।१५ - २०

२४.बृह.देव.१।३५-४०

२५.ऋ.सं.१।२२।१६४।३५
२६.कठोप.२।१५
२७. तैत्ति.आर.३।११।१
२८.तैत्ति.आर.३।१२।७
२९.तैत्ति.उप.२।४
३०.बृह.उप.३।९।२६
३१.बृह.देव.१।९-१०
३२.भाग.पुरा.१।१९।२३
३३.सुबो.१।१।३
३४.तैत्ति.ब्रा.२।२।४।१-३
३५.भग.गीता ३।१४-१५
३६.अणुभा.१।३।२८
३७.भाग.पुरा.३।९।२०-२१
३८.पुरु.सू.१-२
३९.भग.गीता ७।५
४०.भग.गीता ९।१०
४१.भग.गीता १३।१९
४२.भग.गीता १३।२०
४३.भग.गीता ७।१२

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ भक्तिसर्गभक्तिमार्गाविरोधनिरूपणम् ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

नमामि श्रीमदाचार्यं सर्गमार्गविबोधकम् ॥
मिथस्तयोः वैपरीत्यद्योतकं सर्वदा मुदा ॥१॥

(विषयोपन्यासः)

तथाप्यात्मरतेस्तस्य सृष्टिः विस्तारूपिणी ॥
तद्रत्यंशरूपभक्तिः सर्गमार्गसमैव हि ॥२॥

"त्वद्भक्तानाम् आत्मवतां सर्वेषाम् ॥
आत्मनि आत्मदः आत्मतयैव"[१] ॥

अतएवोक्तमाचार्यैः फलसर्गनिरूपणे ॥

"मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च ॥३॥
कायेन तु फलं पुष्टौ... फलं त्वत्र निरूप्यते ॥
भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि ॥४॥
गुण-स्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेद्"[२] ॥

"ज्ञानिनामपि वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति ॥५॥
आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति"[३] ॥

"ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् आत्मनैव सुखप्रमा ॥६॥
संघातस्य विलिनत्वाद् भक्तानां तु विशेषतः ॥
सर्वेन्द्रियैस्तथा चान्तःकरणैरात्मनापि हि ॥७॥
ब्रह्मभावात्तु भक्तानां गृहएव विशिष्यते"[४] ॥

(सर्गमार्गवैपरीत्यप्रतिपादनम्)

तथापि तृतीयस्कन्धसुबोधिन्यां निरूपितम्॥८॥

''कर्मादिमार्गाः वेदोक्ताः फलतस्ते यदि स्थिराः॥
सर्गोऽत्र नैव जायेत ततस्तन्नाश उच्यते॥९॥
कामेन कर्मनाशः स्यात् क्रोधेन ज्ञाननाशनम्॥
लोभेनापि च भक्तिर्हि धर्मिज्ञानीश्वरैः कृता''[५]॥१०॥

एतद् भागवतीये वै सर्गे तूपपादितम्॥

(तदपवादेनावैपरीत्यमपि)

तैत्तिरीयोक्तसर्गेण संवादोऽस्यात्र वर्ण्यते॥११॥
मार्गात्मा भक्तिसर्गोऽतो यथा भागवतोदितः॥

''नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति॥१२॥
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः॥
देहिनां देहसंयोगाद् द्वन्द्वान् ईश्वरलीलया॥१३॥
सुखं दुःखं भृतिर्जन्म शापोऽनुग्रहएव च॥
अविवेककृतो पुंसो ह्यर्थभेदइवात्मनि॥१४॥
गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः॥
वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम्॥१५॥
ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद् व्यपाश्रयः''[६]॥

इति भक्तेर्हि प्राधान्यात् शेषयोरुपलक्षणम्॥१६॥
भक्तावन्तर्भूतयोर्हि स्वातन्त्र्यमनुकल्पतः॥

(उत्सर्गतः यादृक् सर्गमार्गवैपरीत्यं तदुपपादनम्)

तयोः सर्गविरोधित्वं तदिदं बोधितं यथा॥१७॥
अतो भक्तिर्द्विधा निष्ठाभेदाज्ज्ञेयात्र चादिमा॥

धर्मनिष्ठावती ह्येका धर्मिनिष्ठावती परा॥१८॥
आद्या तु विपरीतैव सर्गतः सैव चोदिता॥

(तत्र वेदोक्तभक्तिसर्गमार्गयोरपवादत्वम्)

द्वितीयाऽविपरीता च सर्गमार्गोभयात्मिका॥१९॥
भक्तेरंशत्रयं ज्ञेयं रति-ज्ञान-क्रियात्मकम्॥
रतिस्त्वानन्दतो ज्ञानक्रिये तु सच्चिदंशतः॥२०॥

(तत्प्रक्रिया)

एतदानन्दविज्ञानाद् रतिर्भीतिविवर्जिता॥
"**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान न बिभेती**"[७] ति वाक्यतः॥२१॥
न भीतिसहिता तावद् रतिः भक्तौ फलिष्यति॥
विज्ञानं श्रद्धयैतस्मिन् ऋतसत्यप्रबोधतः॥२२॥
योगेन चित्तसंरोधे तन्माहात्म्यं हि ज्ञायते॥
माहात्म्यबोधे ज्ञानं वै विज्ञानायोपकल्पते॥२३॥
तेनैवानन्दसंदोहो जीवेनात्रानुभूयते॥
सर्वकारणभूतस्य सर्वाधारस्य चापि वै॥२४॥
स्वात्मानन्दरतिक्रीडा परस्य ब्रह्मणो जगत्॥
रतिरंशस्यांशिनि या भक्तिरत्रोच्यते शुभा॥२५॥
माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः॥
स्नेहस्तु भक्तिरूपो वै प्रादुर्भवति सर्वथा॥२६॥

(तत्र श्रुतौ पञ्चकोशात्मसर्गनिरूपणम्)

प्रादुर्भावप्रक्रियास्याः तैत्तिरीये निरूपिता॥
तत्र भूतक्रियाशुद्धिरिष्टान्नप्राणयोः सदा॥२७॥

मनसोऽत्रोपयोगः तत्संकल्पपविकल्पयोः ॥
ऋग्यजुसामाथर्वाणां धर्मादेशानुसारिणाम् ॥२८॥
स्वधर्माचरणाद् ज्ञाने विज्ञानमुपजायते ॥
अन्यथातु रतिर्लोभात् क्रोधाज्ज्ञानं तथा पुनः ॥२९॥
कामाच्चैव क्रियायास्तु नाशात् भूतो विनश्यति ॥
तस्मै प्रपत्त्यर्पणाभ्यां क्रियाभ्यां बोध इष्यते ॥३०॥
बोधाद् विज्ञानरूपाद्धि चानन्दो बुध्यते पुनः ॥
तेनैव निर्भयत्वं वै रतौ सम्पद्यते यतः ॥३१॥
एवमंशत्रयोपेता प्रियमोदप्रमोदतः ॥
आनन्दात्मस्वरूपाहि भक्तिर्भवति वै दृढा ॥३२॥
ब्रह्मवल्ल्युक्तिसिद्धेयं रति'र्भक्ति'पदाभिधा ॥
अतोहि पंचकोशेषु इहचान्नमयादिषु ॥३३॥
अन्न-प्राण-मनो-ज्ञाने ब्रह्मबुर्द्धेर्हि देशना ॥
अन्यथा कामक्रोधाभ्यां लोभेनाब्रह्मतैव हि ॥३४॥
सर्वत्र ब्रह्मतादात्म्यस्फूर्त्या निर्दोषता समा ॥

(तस्य पुष्टिभक्तौ निगमनम्)

प्रपत्त्याहंम्मतेः शुद्धि ममतायाः समर्पणात् ॥३५॥
प्रेम्णा भगवद्रूपसेवा क्रियते निष्ठया सदा ॥
श्रीमदाचार्यचरणैः सा 'पुष्टिभक्ति'तयोच्यते ॥३६॥
जीवेषु परमात्मैककृताद् वरणबीजतः ॥
श्रीमदाचार्यकृपया मया चात्र निरूपिता ॥३७॥

(तत्र आधुनिकानां पुष्टिसर्गजातानां पुष्टिमार्गवैपरीत्यम्)

लाभपूजार्थसंजाता सेवाकृतिः विनश्यति ॥

तन्निषेधात्तु क्रोधेहि तन्माहात्म्यधीः पुनः ॥३८॥
धनलोभेन भगवतो वै लालने रति नश्यति॥

(उपसंहारः)

ततश्चाचार्यमार्गस्था त्र्यंशभक्तेर्हि रक्षणे॥३९॥
दक्षाः भवन्तु भावेनैतेन रचितं मया॥
वाक्पतिदर्शिते मार्गे सर्वे मार्गानुयायिनः ॥४०॥
पुष्टिभक्तिसमाराध्यं कृष्णं शुद्धं भजन्त्विति॥
ततो वाक्पतिभावात्मा हृद्यारुढो भवेत् पुनः॥४१॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
भक्तिसर्गभक्तिमार्गाविरोधनिरूपणं
सम्पूर्णम्

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.भाग.पुरा.५।२४।२१
२.पु.प्र.म.१०-१७
३.स.नि.२०
४.त.दी.नि.१।५०-५१
५.सुबो.३।१।१
६.भाग.पुरा.६।१७।२८-३१
७.तैत्ति.उप.२।४

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ पुरुषोत्तमजोशीवार्तास्थ-वचनामृतव्याख्या ॥

(मंगलाचरणम्)

प्रणम्य श्रीमदाचार्यान् प्रभून् स्वीयान् मुदा हृदि॥
कर्मज्ञानभक्तिमार्गतारतम्यं निरूप्यते॥१॥

(ग्रन्थोपक्रमः)

चतुरशीतिवार्तायां जोशीश्रीपुरुषोत्तमः॥
पृष्टवान् **''कतरो मार्गः श्रेष्ठो वै ज्ञानकर्मयोः''**[१]॥२॥
आचार्यचरणैरुक्तं **''विश्वासो मनसि दृढः॥**
यस्य यत्र स वै मार्गः स्यात् श्रेष्ठस्तत्कृते तु वै॥३॥
तथापि भक्तिमार्गस्य महत्ता निश्चिता मता॥
सर्वाधिकारकत्वात् चाक्लिष्टत्वादि - हेतुतः॥४॥
अन्ययोः क्लेशसाध्यत्वाद् निष्ठादौर्लभ्यमेव हि॥
सत्यां तु हृदि निष्ठायां न क्लेशः साधने क्वचित्॥५॥
निष्ठाभावेऽसहिष्णुत्वात् क्लेशो दुःखाय नान्यथा''[२]॥
इत्युक्तवचनव्याख्यां कर्तुमत्र मनो मम॥६॥
वाणीर्वै वाक्पतेरेतन्मनोरथनियामिका॥
भवतु कृपया तेन ध्रुवा स्यात् कृतकृत्यता॥७॥

(विषयप्रवेशः)

कर्मप्राधान्यवादेषु सृष्टिस्तावत् क्रियात्मिका॥
ज्ञानप्राधान्यवादेषु सृष्टिर्ज्ञानात्मिका यथा॥८॥

भक्तिप्राधान्यवादे तु श्रौते पौराणिकेऽपि च॥
सर्वज्ञानक्रियाशक्तेः हरेर्लीलात्मिकैव सा॥९॥

(कर्मयोगे काठिन्यम्)

जडजीवेशसृष्टौ हि सच्चिदानन्दब्रह्मणः॥
लीलेच्छयाऽविद्याबन्धो विद्यातो मुक्तिभागिता॥१०॥
पञ्चपर्वात्मिकाविद्या जीवानां संसृतिर्मता॥
श्रेयोरूपमुक्त्यै तु योगाः भगवतोदिताः॥११॥
कर्मज्ञानभक्तिरूपाः श्रीकृष्णेनोद्धवाय वै॥
तेषां स्वरूपोपायादेस्तत्त्वं ज्ञेयं हि साधकैः॥१२॥
बहुस्यामहमेको हि येच्छा तस्याः ह्यनेकता॥
तदानंदतिरोभावो यद् भवेत् सच्चिदंशयोः॥१३॥
सदंशेऽथ चिदंशेषु जाता ज्ञानतिरोहतिः॥
सति क्रियैकाविर्भूता ततो भवितुमर्हति॥१४॥
न ज्ञानं नो रतिर्वापि सच्चिदानन्दगे हि ये॥
समष्टिव्यष्टिभेदेन सा क्रियांशांशगा द्विधा॥१५॥
जीवेषु स्यात् क्रियाव्यष्टिः प्रकृतौ तत्समष्टिता॥
व्यष्टिक्रिया सा जीवेषु मनोबुद्ध्याद्युपाधिजा॥१६॥
ज्ञानेच्छायत्नसञ्जाता कर्तुः कर्मवन्मता॥
शास्त्रोक्तक्रिययेशेन जीवयोगो यदा भवेत्॥१७॥
कर्मयोगः स विज्ञेयः काठिन्यं तत्र चोदितम्॥
अल्पज्ञानाल्पकामाल्पयत्नैः कर्म च यत्कृतम्॥१८॥
भवेत् तत्राल्पता तस्याः निष्ठारुक्तहेतुभिः॥
कर्मानुष्ठानसाफल्यं न भवेत् श्रद्धयैकया॥१९॥
"निष्ठाभावे फलं तस्मान्नास्त्यैवेति विनिश्चयः॥

निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया'' [३]॥२०॥
इत्याचार्योक्तिरेवात्र प्रमाणं नात्र संशयः॥
आस्तिक्यबुद्धिरज्ञाते तत्त्वे श्रद्धा मता सदा॥२१॥
ज्ञाते तु विषयेऽभ्यासाद् विश्वासस्तत्र जायते॥
श्रद्धाविश्वाससम्पत्तौ निष्ठा सम्पद्यते पुनः॥२२॥
निष्ठा साधनसंक्लेशसहिष्णुत्वमिहोच्यते॥
निष्ठा तस्मात् सदा कार्यसिद्धिहेतुतया मता॥२३॥
अल्पनिष्ठा ततश्चात्र कर्मक्लेशासहिष्णुता॥
चित्तप्रसादाशक्यत्वम् अल्पनिष्ठाकृतं हि चेत्॥२४॥
कर्मनिष्ठा तदा पूर्णा यदा चित्तं प्रसीदति॥
इत्युक्तत्वात् कर्मयोगकाठिन्यं समुदीरितम्॥२५॥
काठिन्यं कर्मयोगे यत् तज्ज्ञानेऽपि निरूप्यते॥

(ज्ञानयोगे काठिन्यम्)

द्वैविध्यं तत्र विज्ञेयं विधेयोद्देश्यभेदतः॥२६॥
तत्राद्यमात्मनि ज्ञप्तिः ब्रह्मत्वाकारिका तथा॥
ब्रह्मण्यात्मत्वविज्ञानमिति द्वैविध्यमत्र वै॥२७॥
चिदंशेऽथ तिरोभावादानन्दस्य च चेतना॥
केवला ज्ञानरूपा नो चेदुपाधिविनिर्मिता॥२८॥
मनोबुद्ध्याद्युपाधिभिर् जातं ज्ञानन्तु कृत्रिमम्॥
ततश्चात्मसुखं नापि सुखं ब्राह्मं भवेत् क्वचित्॥२९॥
आत्मरत्यात्मको ब्रह्मानन्दो यस्तदभावतः॥
धर्मरूपाश्च ह्यानन्दाद् रतिर्नैवात्मगामिनी॥३०॥
कर्मज्ञानेन्द्रियैर्बाह्यविषयान् अवलम्बते॥
तद्भोगस्यातिरेकाच्च विरतिर्या नियतातु सा॥३१॥

अतो वैषयिकं ज्ञानं ब्रह्मानन्दाद्यभावतः ॥
ज्ञानेन कृत्रिमेणैव ब्रह्मात्मानवगाहिता ॥३२॥
कृतेऽपि ज्ञानयोगे वै साधनोपाधितः पुनः ॥
विरागो ज्ञानयोगेऽपि नासावानन्दधर्मिकः ॥३३॥
ऐश्वर्यादिगुणाभावात् काठिन्यं ज्ञानयोगगम् ॥
निष्ठाह्रासाय भविता तेनैवं विफलो भवेत् ॥३४॥
सार्वज्ञं ज्ञानानिष्ठायां फलमत्रोपपादितम् ॥
ज्ञानिभ्यो रोचते बहुधाऽहं 'ब्रह्मेति' प्रत्ययः ॥३५॥
मनोबुद्ध्याद्युपेतानामहन्ता ज्ञानिनां भुवि ॥
कियती प्राकृतैः बन्धैः ब्रह्मालौकिकबोधने ॥३६॥
अस्मत्प्रत्ययगोचरान्ये वैराग्याद् आर्तबुद्धितः ॥
सर्वस्य ब्रह्मताबोधो दुर्लभो ज्ञानिनामपि ॥३७॥
सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानोपायः क्लेशप्रदो ह्यतः ॥
स्वेतरं निखिलं मिथ्या वदतोऽपि पलायनम् ॥३८॥
न मिथ्याधीर्गजे किन्तु मिथ्याधीः स्वपलायने ॥
तेनैतेनैव क्लेशेन निष्ठाह्रासात् भृशं पुनः ॥३९॥
क्लेशोधिकतरो ज्ञानमार्गे भगवतोदितः ॥

(भक्तियोगे क्लेशाशंकासमाधाने)

नन्वेवं भक्तियोगेऽपि कुतो नेत्थं हि सम्भवेत् ॥४०॥
इति चेत् तन्न वै युक्तं भक्तेः रूपविचारणात् ॥
सर्वत्रात्र ब्रह्मबुद्धिः परोक्षैव मता यतः ॥४१॥
ब्रह्मापरोक्षबुद्धिर्हि स्वाराध्यैकावसायिनी ॥
भक्तेः फलदशायान्तु अन्यदा भावनात्मिका ॥४२॥
स्वाराध्यलीलेच्छातोहि स्वाराध्यस्य तिरोहितिः ॥

अन्यत्रातोहि सर्वत्र नाराध्यस्यापरोक्षधीः ॥४३॥
सुखेन साधनावस्थानिर्वाहः शक्यते यतः ॥
आराध्यो भगवद्रूपो ब्रह्मैवाराधकोऽपि हि ॥४४॥
भक्तिरूपाराधनाऽपि ब्रह्मैवेति ध्रुवा मतिः ॥
ब्रह्मार्चनं ब्रह्मपूजोपस्करं ब्रह्मचार्चकः ॥४५॥
ब्रह्मार्च्यं तत्फलं ब्रह्म लीलाभेदोपपत्तितः ॥
अतोऽर्च्ये ह्यपरोक्षैव मतिर्ब्रह्मावगाहिनी ॥४६॥
अन्यत्र तु परोक्षैव मतिर्लीलाप्रभेदतः ॥
ब्रह्मानन्दस्त्वात्मरतिस् तद्विस्तारो जगन्मतम् ॥४७॥
वैविध्यमात्मरत्यां यत् तेन सर्वं समञ्जसम् ॥
रतिः सैव पुनर्जीविष्वंशेषु विद्यतेंऽशतः ॥४८॥
अतः सिद्धा रतिः स्वस्मिन् अज्ञानादन्यगा परम् ॥
विषये शिथिलां कृत्वाराध्ये योज्या शनैरियम् ॥४९॥
"प्रियाः सर्वेऽत्रात्मनोहि प्रियत्वात्"[४] श्रुतिराह यत् ॥
"अहमात्मात्मनां धातः श्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि ॥५०॥
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्यत् कृते प्रियः"[५] ॥
उक्तं भागवते चैवमतः सिद्धा रतिर्मता ॥५१॥
आनन्दस्य तिरोधानाद् षड्गुणानां तिरोहतिः ॥
अकृत्रिमाणां तेषान्तु कृत्रिमाणां समुद्भवः ॥५२॥
भक्तिमार्गे ततश्चैवं साधने क्लेशवारणम् ॥
भगवत्प्रसादाद् निष्ठेयं निष्ठातो वा प्रसन्नता ॥५३॥
बीजांकुरप्ररोहस्य सापेक्षत्वं मिथो यथा ॥
"सर्वं करोति भगवान् भजनेन विना नहि"[६] ॥५४॥
अत उक्तं निजाचार्यैः सृष्टेस्त्रैविध्यमत्रतु ॥
पुष्ट्यादिरूपाः भगवत्कायवाङ्मनसा पुनः ॥५५॥

तत्प्राप्तिर्हि यथा लीला लीलयाऽप्राप्तिरप्युत॥
नहि साधनक्लेशाय किन्तु तद्विरहाय वै॥५६॥
भक्तेस्तु रतिरूपत्वाद् द्विदलात्मकता यतः॥
संयोगविप्रयोगौ चोभयोः भक्तिस्वरूपता॥५७॥
अतः सिद्धावसिद्धौ वा फलसाधनयोः पुनः॥
सर्वत्र भगवल्लीलानुभावात् कष्टनिष्कृतिः॥५८॥
अतो भक्तौ हि सर्वाधिकारकता प्रकीर्तिता॥
भगवत्प्रियता चापि गीतायामुपवर्णिता॥५९॥
"समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः॥
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्"[७]॥६०॥
भक्तिरेवं कृपालभ्या दैन्यं तदनुभावना॥
तच्चिदंशस्य जीवस्य यो यदंशः स तं भजेत्॥६१॥
भजनं स्वाभाविकं तेन न क्लेशः साधने क्वचित्॥
निष्ठाभंगस्य नो भीतिः जीवः प्रावाहिको न चेत्॥६२॥
"प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थतैर्न युज्यते॥
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः"[८]॥६३॥
उक्तत्वेनैवमाचार्यैः निष्ठाभंगे न पुष्टिता॥
पुष्टिमार्गेऽङ्गीकृतस्य निष्ठाभंगो न वै क्वचित्॥६४॥
"हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधा कुतोऽपरे॥
अन्यथा मातरो बालान् न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित्"[९]॥६५॥
इत्येवमुक्तमाचार्यैरतो शंका न काचन्॥
यतश्चात्मरतिः साक्षाद् अंशगा भक्तिरुच्यते॥६६॥
माहात्म्यज्ञानपूर्वा चेत् पाञ्चरात्रोक्तलक्षणा॥
भक्तौ माहात्म्यज्ञानं तत् शास्त्रशब्दप्रमात्मकम्॥६७॥
तदापरोक्ष्यं नात्रेष्टं भजनप्रतिबन्धकम्॥

भक्तेर्व्यसनभावे तु विरहोत्कण्ठतावशात्॥६८॥
सर्वात्मभावसंसिद्धिः आसक्तिभ्रमन्यायतः॥
सर्वत्र भगवत्स्फूर्तिरापरोक्ष्येण या भवेत्॥६९॥
सञ्चारिभावरूपा सा कदाचिन्नतु सर्वदा॥
भक्तिभावे चमत्काराधानेन रसपोषणात्॥७०॥
भक्तेः स्वरूपवैशिष्ट्यात् फलसाधनकक्षयोः॥
न क्लेशो मार्गतो वापि जीवानां वा स्वभावतो॥७१॥
हर्रेहृदि यत्प्राकट्यं भक्तिभावात्मकं हि तत्॥
बर्हियद् भजनीयस्य रूपं भक्त्यात्मकन्तु तत्॥७२॥
आत्मारामात्मरत्योर्हि तादात्म्याद् एकवद् द्विधा॥
प्रकाशाश्रयन्यायेन ब्रह्मसूत्रोपपादिता॥७३॥
स्वरूपसौख्यं खलु भक्तिमार्गे
मुक्तेः सुखं ज्ञानवतां च वर्त्मनि॥
स्वर्गादिलोकेऽपि सुखप्रदाता
गर्ह्ये सुखाभासपथि स एव॥७४॥

"न यस्य कश्चातितिर्तति मायां
यया जनो मुह्यति वेद नार्थम्॥
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं
नमामि भूतेषु समं चरन्तम्" [१०]॥७५॥

(उपसंहारः)

आचार्यकृपयैवं हि वार्तास्थं वचनामृतम्॥
व्याख्यातं हि कृपालब्धमतिनेह न संशयः॥७६॥
तथापि स्वमतेर्दोषादयुक्तं लिखितं मया॥
क्षमन्तु श्रीमदाचार्याः ज्ञात्वा तद् बालचेष्टितम्॥७७॥

कार्तिके चासिते पक्षे द्वादश्यां वै किशनगढे॥
द्वासप्तत्युत्तरसहस्रे द्वे वेक्रमाब्दे विनिर्मिता॥७८॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण
विरचिता
पुरुषोत्तमजोशीवार्तास्थवचनामृतव्याख्या सम्पूर्णा

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१,२.द्रष्ट.८४ वै.वा.३०
३.त.दी.नि.१।१८
४.बृह.उप.२।४।५
५.भाग.पुरा.३।९।४२
६.सुबो.३।३२।२२
७.भग.गीता ९।२९
८.पु.प्र.म.२५ - २६
९.सं.नि.१९
१०.द्रष्ट.भाग.पुरा.८।५।३०

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ "कथा इमास्ते" कारिकोपरि विवरणम् ॥

प्रणम्य श्रीमदाचार्यान् प्रभून् स्वीयान् गृहे स्थितान् ॥
"कथा इमास्ते" श्लोकस्य भक्तौ तात्पर्यमुच्यते ॥१॥
सर्गादिमोक्षपर्यन्ताः कथाः भागवते हि याः ॥
तदाश्रयार्थाः लीलायां तत्सृष्टानां तदंगता ॥२॥
लीलासृष्टमहीयासामपि कथा तादात्म्यविज्ञानतः
स्रष्टुः सृष्टिविरागभावनमुखा तस्मिन्निरोधात्मिका ॥
तद्भक्तावपि साधनत्वमतिना ह्यन्याश्रयाद् दुष्टता
तल्लीलामतिना तु तद्रतिरपि लीलात्मिका जायते ॥३॥
आत्मारामः स एकाकी द्वेधात्मापादनेन वै ॥
स्वात्मनि स्वात्मनात्मानं सृष्ट्वा वै रमते परः ॥४॥
"पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः पुरः ॥
स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशद्"[१] ॥५॥
"तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनि-
ष्वात्मेच्छयात्मकृतसेतुपरीप्सया यः ॥
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्
तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय"[२] ॥६॥
तस्यात्मरतिरेवास्ति स्वसृष्टिरमणात्मिका ॥
जीवेष्वपि ये तदंशाः श्रीकृष्णे विनियोजिताः ॥७॥
कृष्णलीलानुकूल्येन स्युस्तल्लीलात्मकाअपि ॥
तत्सृष्टरूपनाम्नोर्वा कर्मणि वा तु योजने ॥८॥
अहन्ताममताबन्धाद् आलयं ह्यविमुक्तता ॥
अतो भक्तेर्हि द्वैविध्यं मुख्या गौणीति भेदतः ॥९॥

जीवस्वभावतो जाता गौणी भक्तिरिहोच्यते॥
बीजस्वभावतो जाता मुख्या भक्तिर्ध्रुवा मता॥१०॥
जीवस्वभावदोषात्तु दोषोऽन्याश्रयएव हि॥
"**जीवाः स्वभावतो दुष्टाः**"[३] वचनाद् दोषरूपता॥११॥
बीजं तस्यानुग्रहो यः स्वलीलानुभवाय वै॥
स्वरूपयोग्यतादानं तत्स्वभावात्तु चोत्तमा॥१२॥
तल्लीलानुभवाद् भक्तौ स्वाहंकारविसर्जनम्॥
साधनत्वमतेर्लोपः सम्भवत्यन्यथान्यथा॥१३॥
प्रपञ्चस्मृतिसाहित्ये तदासक्तेरशुद्धता॥
लीलेदृशी वै दशमे स्कन्धे कृष्णस्य वर्णिता॥१४॥
इमे विज्ञानवैराग्ये विवक्षातोऽत्र वर्णिते॥
लीले निरोधाश्रययोः एके च द्विविधे ह्यपि॥१५॥
माहात्म्यज्ञानिनस्तस्मिन् रतिभक्तिर्मता यथा॥
शुद्धिस्तस्याश्चेतरेषां विस्मृत्या तु विशिष्यते॥१६॥
सर्वलीलाश्रयः कृष्णः क्रीडत्युभयथा स्वयं॥
प्रपञ्चे कर्हिचित् स्वस्मिन् कदाचिदिति भेदतः॥१७॥
प्रपञ्चे क्रीडनं तस्य प्रपञ्चासक्तिवारकम्॥
'निरोध'पदवाच्यं तत् स्वस्मिंस्त्वाश्रयभावतः॥१८॥
क्रीडनं चात्मरमणं स्वात्मन्येवात्मनः पुनः॥
रूपाणां कर्मणां नाम्नां सच्चिदानंदरूपता॥१९॥
तत्रानन्दतिरोधानात् चिति पुरुषरूपता॥
चिदंशस्य तिरोधानाद् जड़प्रकृतिरूपता॥२०॥
तिरोहितो यश्चानन्दस्तदंशः ईश्वरोऽभवत्॥
जड़जीवेशरूपेण तस्यान्तर्यामिता मता॥२१॥
सृष्टिरेवं स्वरूपा हि एकस्यानेकभावता॥

पुनश्च सच्चिदानन्दरूपताश्रयतोच्यते॥२२॥
तिरोहिता ब्रह्मता या रूपे नाम्नि च कर्मणि॥
आविर्भावात् पुनस्तस्याः सिद्ध्येद् आश्रयरूपता॥२३॥
प्रपञ्चे लीलया तस्य भक्तादिषु हि द्रष्टृषु॥
प्रत्यापत्तिर्निरोधात्मा दृश्यद्रष्ट्रोः विजायते॥२४॥
दोषदर्शनजन्यं यद् वैराग्यं तद् इतरं मतम्॥
भक्तेः लीलात्मिकायास्तु ज्ञानांगं तद् उदीरितम्॥२५॥
दृढानुरागतः कृष्णे मूलरूपे तु भक्तितः॥
विज्ञानरूपभक्त्यंगं वैराग्यञ्चोपजायते॥२६॥
गीतायाः नवमेऽध्याये राजविद्यातया पुनः॥
भक्तिरेव हि 'विज्ञान'-पदवाच्या निरूपिता॥२७॥
तत्र ज्ञानं च विज्ञानसहितं यत्तु वर्णितम्॥
ज्ञानं माहात्म्यज्ञानं तद् विज्ञानं भक्तिरेव तत्॥२८॥
"**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः॥**
ये भजन्तितु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्"[४]॥२९॥
समत्वन्तु समैः साकं नूनं माहात्म्यमेव तत्॥
समस्यापि हि वैषम्यं स्वलीलाभक्तिहेतुकम्॥३०॥
एवं माहात्म्यज्ञानाच्च विज्ञानन्तु विशिष्यते॥
तत्तादात्म्यानुभावोत्था तद्रतिर्निरुपाधिकी॥३१॥
नन्वत्रैकादशे प्रोक्तं श्रीमद्भागवतेतु यत्॥
"**ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान्**"[५]॥३२॥
कारिकाविवृतौ चापि 'विज्ञाना'र्थो यथोदितः॥
पुरुषोत्तमैर्हि विज्ञानं कार्ये कारणान्वयः॥३३॥
उक्तस्ताभ्यां विरुद्धोऽर्थो कर्तुं नैवोचितो यतः॥
इति चेत् तत्समाधानं बुद्ध्या बोद्धव्यमेव हि॥३४॥

न 'विज्ञान'पदस्यार्थतया भक्तिरिहोच्यते॥
भक्त्या वै भजनीयस्य भानं विज्ञानमुच्यते॥३५॥
प्रमाणफलयोरेवमैक्यादेकार्थवाचिता॥
भक्तिः प्रमाणं विज्ञानं फलं तद् भक्तिहेतुकम्॥३६॥
''**भक्त्यात्वनन्यया शक्यमहमेवंविधोऽर्जुन**''[६]॥
''**भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः**''[७]॥३७॥
पार्थक्यस्य विवक्षायां पृथगुक्तौ नवा क्षतिः॥
राजविद्याराजगुह्यतया भक्तेर्निरूपणम्॥३८॥
विसंगतं भवेद् भक्तेः गीतायामन्यथा पुनः॥
अतो दोषो न मन्तव्यः कश्चनैवं निरूपणे॥३९॥
ईदृश्यनन्यभक्तिर्या सानन्याश्रयणात्मिका॥
अनन्याश्रयएवातो निरोधोऽनन्यभक्तिकृद्॥४०॥
भजनीये स भक्तानां निरोधः प्रलयात्मकः॥
आत्यन्तिकतयाख्यातोऽपरः प्राकृतिकोऽपि च॥४१॥
द्वादशस्कन्धवर्ण्यः श्रीकृष्णात्मरमणात्मकः॥
''**वचोविभूति**''[८]रित्युक्त्या सोऽप्यन्याश्रयवारकः॥४२॥
स्वात्मकानां स्वतः स्वस्मिन् स्वभिन्नत्वेन द्योतनात्॥
यथा ह्यन्याश्रयः शक्यस् तद्विरागे निरुद्धता॥४३॥
तदेव गीतं गीतायाम् अनन्योपासनं वरम्॥
अन्यस्मिन् श्रद्धया चान्यभजनं ह्यज्ञानहेतुकम्॥४४॥
अतोऽवस्थाद्वयं भक्तेः फलसाधनभेदतः॥
विज्ञानसहितं ज्ञानं फलं तदितरत् पुनः॥४५॥
विज्ञानं ज्ञानरहितं विज्ञानरहितञ्च तत्॥
इत्थमेकतराभावे आसक्त्याश्रययोरपि॥४६॥
अनन्यतायाः भंगेन साधनावस्थता मता॥

ज्ञानविज्ञानयोर्योगे फलावस्था प्रकीर्तिता ॥४७॥
ननु भक्तौ च भेदेन भानं भक्तेशयोस्तु यत् ॥
भक्तिभंगाद् आश्रयोऽपि भग्नएव भवेद् नवा ? ॥४८॥
इति चेत् तन्न युक्तं हि भक्तावाधिक्यबोधनात् ॥
"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥४९॥
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥५०॥
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते"[९] ॥
इत्यतः श्रीमदाचार्यैः निबन्धेऽपि निरूपितम् ॥५१॥
"ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानामात्मनैव सुखप्रमा ॥
संघातस्य विलीनत्वाद् भक्तानान्तु विशेषतः ॥५२॥
सर्वेन्द्रियैस्तथाचान्तःकरणैरात्मनापि हि ॥
ब्रह्मभावात्तु भक्तानां गृहएव विशिष्यते"[१०] ॥५३॥
भक्तौ साधनरूपायामेवं सर्वं तदात्मकं ॥
फलानुषंगिकं द्वैतं तत्क्रीडार्थतया पुनः ॥५४॥
सर्वभावेन सर्वस्य स्वस्य चास्मै समर्पणम् ॥
सर्वस्यैव तदर्थैकमत्या तस्मिन् नियोजनम् ॥५५॥
"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥५६॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपेष्यसि"[११] ॥५७॥
स्वकर्मफलभोगात्मा लोकोऽयं तत्र वैदिकम् ॥
यज्ञदानतपोरूपमात्मिकं तन्निवेदनात् ॥५८॥
सर्वबन्धविनिर्मोको 'विमुक्त'पद बोधितः ॥
जीवन्मुक्तिसमा भक्तिः 'विमुक्ता'वप्रयोगतः ॥५९॥

प्रपञ्चो भगवत्क्रीडा आसर्गादाच मोक्षतः॥
निरोधस्तु प्रपञ्चे हि क्रीडा संसारमोचिका॥६०॥
तेनात्र जीवतां मुक्तिर्भक्तिः सिद्ध्यति सर्वथा॥
क्रीडाकर्तुः परस्यैह प्रपञ्चे क्रीडनात्मके॥६१॥
स्वस्वाम्यं कुमतेर् लिंगं तत्स्वाम्यं सुमतेस्तथा॥
ततः स्वस्य स्वकीयानां परस्मै विनियोजने॥६२॥
तल्लीलारूपता सृष्टावाविर्भवति सर्वथा॥
अन्याश्रयेण रहितं ज्ञानं विज्ञानसंगतम्॥६३॥
सैषा विवक्षिता ह्यत्र कथाकथ्यतया पुनः॥
सृष्टिस्थितिलया लीला जगतो यद्वदेव हि॥६४॥
बन्धमोक्षौ च भक्तिश्च स्याल्लीला तद्वदेव हि॥
एवं भक्तौ हि लीलायाः भानात् सिद्ध्यति मुख्यता॥६५॥
साविर्भवेन्न यावत्तु तावदन्याश्रयो मतः॥
लोकवेदाश्रयाभ्यां च स्वाहन्तामममताश्रयात्॥६६॥
भक्तौ सर्वत्र सर्वेषु लीलातादात्म्यबुद्धिजात्॥
अन्यतोन्मूलनाच्चैव सर्वभावेन भावनम्॥६७॥
एकस्य मूलरूपस्य तन्माहात्म्यानुभावतः॥
लीलार्थं निखिलं नामरूपकर्मभिदात्मकम्॥६८॥
रसात्मकं **"रसो वै स यद् वै तत् सुकृतं"**[१२] मतम्॥
सृष्टिस्रष्ट्रोस्तु तादात्म्यं साम्यवैषम्यहेतुकम्॥६९॥
ज्ञातव्यं द्विविधं नूनं प्रक्रियाप्रतिपित्सुभिः॥
तद्दत्तदृष्ट्या भातं तच्चाद्यं प्रत्यक्षमर्जुने॥७०॥
'ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्' अनिर्भातं श्रुतीरितम्॥
भातं भक्तौ रसाभासजनकं प्रायशो मतम्॥७१॥
श्रुतीरितं तन्माहात्म्यपरोक्षज्ञानगोचरम्॥

सर्वोपादानभावेन तत्तादात्म्यं हि सर्वगम्॥७२॥
निरुपाधिकभक्तौ तन्माहात्म्यज्ञानवन्मतम्॥
येन सर्वसमत्वञ्च ब्रह्मणो ह्यधिगम्यते॥७३॥
''स भूमिं विश्वतो वृत्त्वा ह्यत्यतिष्ठद् दशांगुलम्'' [१३]॥
श्रुतावस्यां सर्वसमः सर्वातीतश्च गद्यते॥७४॥
सर्वातीतस्तु सर्वेभ्यो विषमः समुदीरितः॥
तस्यानुभावो वरणेन जीवानां भक्तिदायकः॥७५॥
भक्तेशयोस्तु वैषम्ये **''मयि ते तेषु चाप्यहं''** [१४]॥
भेदाभेदाद्यतीतं हि तादात्म्यं नटनाट्यचयोः॥७६॥
रसानुभूतिजनकं ब्रह्मतल्लीलयोस्तथा॥
श्रीमुखोक्तन्तु तादात्म्यं कृपाभक्त्येकगोचरम्॥७७॥
रसात्मकं मतं तत्तु नटे नाट्यनरौ यथा॥
तादात्म्यमेतयोः स्पष्टं साम्यवैषम्यमूलकम्॥७८॥
एवं भक्तसमत्वेऽपि भक्तान्तस्थः कृपावशः॥
भावपुष्ट्या बहिर्भातो भक्त्यालम्बनरूपधृक्॥७९॥
लोकेऽभेदोपचारोऽत्र वर्ण्यते विबुधैः परम्॥
एकस्मिन्नद्वितीयेतु भेदो लीलाभिकांक्षितः॥८०॥
भक्तौ हि भगवल्लीलामत्यैवं मुख्यता मता॥
भक्त्युत्तरापि या मुक्तिः नैवाभक्तिस्वरूपिणी॥८१॥
याभिः सर्गादिलीलाभिः स्वात्मानमावृणोत्ययम्॥
ताभिरेवानुग्रहेण स्वात्मानं द्योतयत्यपि॥८२॥
''स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्वः'' [१५] **''स सर्वनामा स च विश्वरूपः''** [१६]॥
स मानमेयोभयरूपतां भजन् स्वेन स्वमात्मानमनावृणोति॥८३॥
''सहैव सन्तं न विजानन्ति देवाः इन्द्रस्यात्मानं शतधा चरन्तम्'' [१७]॥
''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ताः ह्यस्य हरयः शता दश'' [१८]॥८४॥

''नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः'' [१९] ॥

''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'' [२०] ॥८५॥

इत्यादिवचनान्येव हृदिकृत्य महाप्रभुः ॥

''रूपप्रपञ्चवैचित्र्यं जीवास्त्वल्पधियः पुनः॥८६॥

द्रष्ट्वा भ्रान्ताः भवन्त्येवमंशत्वाद्'' [२१] अब्रवीत् तथा ॥

''आविर्भावतिरोभावैर्मोहनं बहुरूपतः'' [२२] ॥८७॥

जातोऽनुग्रहभाक्सु भावितवपुः स्वस्मिन्निरोधप्रदः
भिन्नत्वेन विभावितोऽपि सकले स्वाभेदविज्ञापकः ॥
लीलानां दशकैः सदा विहरणे स्वानन्दपूर्णः परः
सोऽयं क्रीडति स्वाश्रयाश्रयरिह स्वस्मिंश्च स्वस्माद् बहिः ॥८८॥
श्रुत्युक्तं सृष्टिजननं प्रमेयत्वपरिग्रहः ॥
स्थितिः प्रमाणकल्पातु स्वप्रकाशस्य वस्तुनः ॥८९॥
प्रयाणं तत्र सृष्टानां नामरूपविलापकम् ॥
यथा श्रुतौ पुराणेऽपि तत्त्रिधाकरणेन हि ॥९०॥
लीलासु नवधोक्तासु सर्गाद्यासु प्रमेयता ॥
पोषणाद्यासु लीलासु प्रमाणत्वञ्च तस्य हि ॥९१॥
प्रयाणं यच्छ्रुतं तत्र तदीशानुकथादिषु ॥
एवं हि नवलीलाभिर्लक्ष्योऽलक्ष्यः सएव हि ॥९२॥
लक्षणैस्तस्य विज्ञानं लक्ष्याश्रयविशोधनम् ॥
लक्षणैस्तस्य चाज्ञानमन्यस्याश्रयणाय हि ॥९३॥
स्वात्मकेषु स्वसृष्टेषु रूपवत्सु जडेष्वपि ॥
नामवत्सु च जीवेषु कर्मसु बन्धकृत्सु च ॥९४॥
रसानन्दतिरोधानाद् बन्धमोहौ हि दुःखिषु ॥
आतश्चाश्रयद्वैविध्यं शास्त्रमृग्यप्रपन्नता ॥९५॥
सायुज्यमथवा तस्मिन् क्रियया पञ्चधा तु तत् ॥

ज्ञानेन चाष्टधा भेदो निजाचार्योपदेशतः ॥९६॥
पञ्चधाश्रयशुद्धिर्हि स्याद् विज्ञानविरागतः ॥
कृष्णाश्रयस्तत्र चाद्यो द्वितीयो जगदाश्रयः ॥९७॥
वेदाश्रयस्तृतीयः स्याद् भक्तिमार्गाश्रयस्ततः ॥
नामात्मकं तत्स्वरूपं श्रीमद्भागवतं मतम् ॥९८॥
तस्याश्रयः पञ्चमोऽत्र तत्राप्येतदिहोच्यते ॥
लोकवेदाश्रयस्यास्मिन् कलिकाले ह्यशक्यता ॥९९॥
कालस्वभावदोषात्तु भक्तेर्दुस्साध्यता मता ॥
शिष्टौ प्रपत्त्यै कृष्णस्य रूपनाम्नोः समाश्रयौ ॥१००॥
श्रीकृष्णरूपे विज्ञेया प्रमेयबलमुख्यता ॥
तथा भागवते शास्त्रे प्रमाणबलमुख्यता ॥१०१॥
कथासारो हि निःसारो न कृतश्चेद् कथापरैः ॥
तदुक्तं तत्कथाया हि माहात्म्ये कण्ठतः स्वयम् ॥१०२॥
"**विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे-गेहे जने-जने ॥**
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः"[२३] ॥१०३॥
भक्तेर्जरठताप्युक्ता ज्ञानवैराग्ययौवने ॥
भक्तेश्च यौवने चैवं ज्ञानवैराग्यवृद्धता ॥१०४॥
विषयानुपलम्भाच्च पुत्रयोः क्षीणतोदिता ॥
एवं भक्त्यनिरोधे स्यात्पाशस्तूभयतो यतः ॥१०५॥
तन्निराकरणं भागवत्या भक्त्यैव नान्यथा ॥
अतो भागवतं नूनं सर्वथा हितकारकम् ॥१०६॥

अतो

श्रीमद्भागवताश्रयाद् यदि भवेद् भक्तिः परस्मिंस्तदा
तत्तारुण्यचमत्कृतिस्तु भविता साकन्तु तत्पुत्रयोः ॥१०७॥
श्रीकृष्णस्य कथात्र या दशविधा भक्तेर्विवक्षावशाद्

प्रोक्ता त्रिष्वपि यौवनोद्भवकरी श्रेयस्करी सर्वथा॥१०८॥
लाभपूजार्थयत्नेषु विनियोगविवर्जिता॥
चेत् कृष्णाश्रयस्तोत्रस्य जलभेदेन संगतिः॥१०९॥
''ब्रह्मरूपं जगज्ज्ञेयं ब्रह्मातो व्यतिरिच्यते॥
आसक्तिस्तु ततः कार्या कृष्णे सर्वात्मके सदा'' [२४]**॥११०॥**
अतोऽखिलात्मनि तस्मिन् भक्तिरप्यखिला खलु॥
श्रीमद्भागवताज्जाता सैवेहास्ति विवक्षिता॥११३॥
नन्वन्यथेहोपक्रमात् तात्पर्यं वर्ण्यते कुतः?॥
उपक्रमोपसंहारविरोधान्नैकवाक्यता॥११२॥

इति चेद् न

''भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः॥
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतस्स्युः पुष्टिस्तुष्टिक्षुदपायोऽनुघासम्'' [२५]**॥११३॥**
उक्तत्वेनाप्यभ्युपेतः आचार्यचरणैरपि॥
भक्तिस्वरूपफलयोः सिद्धचै भगवदाश्रयः [२६]॥११४॥
श्रीकृष्णैकज्ञानभक्तिकर्मणां सर्वगुह्यता॥
सुदुर्लभातो तानेतान् त्यक्त्वा तस्याश्रयः शुभः॥११५॥
''सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः... ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु...॥११६॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच'' [२७]**॥११७॥**
स्वप्राप्तिसाधनांगत्वेनाश्रयस्य प्रकीर्तिते॥
विकल्पतानुकल्पतेऽत्र प्रमुखे मौखिके खलु॥११८॥
भक्तेरतोऽपि तल्लीलारूपतासिद्धये पुनः॥
आश्रयेणोपसंहारः सर्वथा हि समञ्जसः॥११९॥
''कथा इमास्ते''श्लोकस्य व्याख्या स्वमतिशुद्धये॥

रचिताचार्यचरणानां कृपयैव न संशयः ॥१२०॥
द्यौत्यं यत्किमपीह तत्तदखिलं विद्योतितं प्राक्तनैः
श्रीमद्वल्लभवाग्विचिन्तनपरैः व्याख्यातृभिः सर्वथा ॥१२१॥
वृन्दाकाननवेणुवादकमुखाद् विद्योतिते वर्त्मनि
राकायामहमात्मभासनपरः खद्योतवद् द्योतकः ॥१२२॥
यद्यत्र श्रीमदाचार्याभिप्रायाद् अन्यथोदितम् ॥
चेत् ते क्षमन्तु वै स्वीयबालबुद्धिविचेष्टितम् ॥१२३॥
वैक्रमे वत्सरे सप्तत्युत्तरे द्विसहस्रके ॥
त्रयोदश्यां हि शुक्लायां फाल्गुने रचितं मया ॥१२४॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण विरचितं
"**कथा इमास्ते**"कारिकाविवरणं
सम्पूर्णम्

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.बृह.उप.२।५।१८
२.भाग.पुरा.३।१९।२३
३.बा.बो.१६
४.भग.गीता ९।२९
५.भाग.पुरा.११।१९।१३
६.भग.गीता ११।५४
७.भग.गीता १८।५५
८.भाग.पुरा.१२।३।१४
९. भग.गीता ६।३०-३१
१०.त.दी.नि.१।५०-५१
११.भग.गीता ९।२७-२८
१२.तैत्ति.उप.२।७
१३.ऋक्.संहि.१०।९०।२
१४.भग.गीता ९।२९
१५.भाग.पुरा.२।१।३९
१६.भाग.पुरा.६।४।२८
१७.तैत्ति.आर.३।११।५
१८.बृह.उप.२।५।१९
१९.भग.गीता ७।२५
२०.भग.गीता ७।१४
२१.त.दी.नि.प्रका.२।१८
२२.त.दी.नि.१।७२
२३.श्रीभाग.माहा.१।७१

२४.सुबो.२।९।३५
२५.भाग.पुरा.११।२।४२
२६.द्रष्ट.वि.धै.आ.१०-१३-१७
२७.भग.गीता १८।६४-६६

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ उपनिषदुक्तरसस्य नाट्यशास्त्रोक्तरसेन ऐक्यमनैक्यम् वेति रसमीमांसा ॥

["शश्वत् स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय
बोधधिषणाय नमः परस्मै।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीला -
रासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय॥
त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज -
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथपुंसां।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय"[१] ॥]

(मंगलाचरणम्)

सर्वान्ततरतमानन्दः श्रुतिप्रोक्तो रसात्मकः॥
सदानन्दः कृष्णरूपो भगवान् तं भजामहे॥१॥

(उपक्रमः)

"एकस्यैवाद्वितीयस्य ब्रह्मणो रसरूपता॥
कृष्णस्य नटवरत्वोक्तिः"[२] श्रीभागवते यथा॥२॥
नटराजशिवश्चापि शैवशास्त्रे विवर्णितः॥
नाट्यशास्त्रे रसश्चोक्तो नचाद्वैतात्मकस्तु सः॥३॥
उभयोरैक्यमथवा प्रभेदो वेति चिन्त्यते॥

(तत्र शंकासमाधाने)

विभावानुभावभेदात् तथा सञ्चारिभेदतः॥४॥

निष्पद्यमानो जन्यो वा रसो ब्रह्म कथं भवेत् ?॥
देशकालस्वरूपैर्हि यस्यास्त्यपरिच्छिन्नता॥५॥
तादृशो ब्रह्मणस्तावद् रसत्वं सम्भवेत् कथम् ?॥
शैवशास्त्रे शिवो ब्रह्म वैष्णवे विष्णुरेव हि॥६॥
''त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्''[३]॥
इति कृष्णात्मकौ चोभौ श्रीमद्भागवतोदितौ॥७॥
''नहि सर्वस्य कामाय सर्वं भवति वै प्रियम्॥
कामाय चात्मनः सर्वं प्रियं''[४] श्रुतिषु वर्णितः॥८॥
''अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि॥
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्यत्कृते प्रियः''[५]॥९॥
तदत्र नात्मा जीवात्मा परमात्मा विवक्षितः॥
कृष्णो भागवते ब्रह्मपरमात्माभगवानपि॥१०॥
वर्णिता सकला सृष्टिः रासलीलास्वरूपिणी॥
'शश्वत्स्वरूप'वचने आदावुक्ते इहापि वै॥११॥
सत्येवं द्विविधा ज्ञेया तस्यैवं रसरूपता॥
स्वलीलानैक्यसंकल्पोद्भूता सृष्टिस्वरूपिणी॥१२॥
भक्तबुद्धिविभावोत्थान्या सृष्टिः भक्तगोचरी॥
तस्माच्छ्रुतौ सृष्टिबाह्या परैका रसरूपता॥१३॥
सृष्टावाभ्यान्तरी चान्या भक्तभावानुसारिणी॥
आद्यात्मरतिविस्तारतया संकल्पिता स्वतः॥१४॥
द्वितीया भक्तवरणाद् तद्भावात्मतनोरपि॥
विवरणाद् रसरूपत्वं श्रुत्युक्तं नचान्यथा॥१५॥
स्वभावसिद्धस्यैकस्य सामर्थ्याद् यात्वनेकता॥
द्वितीये चैच्छिके द्वैते तदद्वैतस्य सम्भवात्॥१६॥
अद्वैतरूपे तत्त्वे हि श्रुत्येकाधिगते सदा॥

नाट्यशास्त्रोक्तभेदोपि रसानामुपपद्यते॥१७॥
ऐच्छिकं तच्च द्वैतं हि बहुधा श्रुतिभिरुच्यते॥
आत्मद्वैधापातनं च स्त्रीपुंभेदोपलक्षितम्[६]॥१८॥
"**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपं**"[७] वचनेपि तथापरम्॥
सच्चत्यच्चात्मकं बोधदृष्ट्या वाण्या तथा परम्॥१९॥
निरुक्तंञ्चानिरुक्तञ्च तत्त्वदृष्ट्या परं तथा॥
सर्वत्र विद्यमानत्वात्सर्वातीततयापि च॥२०॥
निलयनञ्चानिलयनञ्चेत्येवं श्रुतिषु वर्णितम्॥
तत्त्वकर्तव्यबुद्धिभ्यां विश्वं सत्यानृतात्मकम्॥२१॥
तच्चापि तस्य लीलेति वक्तुं श्रुत्या विबोधितम्॥
"**सत्यञ्चानृतञ्चापि ह्यभवत् सत्यमेव तत्**॥२२॥
तदैक्षत प्रजायेय बहुस्या"[८]मिति वर्णने॥
"**विचित्य सर्वरूपाणि नामान्यभिवदन् पुनः**"[९]॥२३॥
कर्माण्यनेकरूपाणि त्रित्वेऽपि ह्यैक्यरूपता॥
ब्राह्मिकी च तदैक्यैऽपि नामादिभिः त्रिधा भिदा॥२४॥
नच वाच्यमनित्यत्वात् त्रयाणामसदात्मता॥
कादाचित्कं हि यत् सत् स्यात् तदनित्यमिहोच्यते॥२५॥
अन्यदा हि सतोऽसत्त्वं श्रुत्यापि प्रतिषिध्यते॥
"**कथमसतः सज्जायेत**"[१०] इत्यत्र श्रुताविह॥२६॥
सत्त्वेनेदं प्रतीतं च प्रागपि स्यात् सदेव हि॥
"**चतुष्पदः ब्रह्मपादारनित्यास्तु दिगादयः**"[११]॥२७॥
"**पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥**
भूतभव्यात्मकं सर्वं विश्वं पुरुषएव सः"[१२]॥२८॥
ततश्च रसता तस्य न मृषा भवितुमर्हति॥
तस्याः चात्मरतेरेव द्वेधापातनपूर्विका॥२९॥

लीलेयं सृष्टिरूपेति सर्वथैव तदात्मिका॥
सच्चिदानन्दता तस्य मूलरूपतयोदिता॥३०॥
सृष्ट्युपादानकर्तृत्वधर्मदृष्ट्यान्यथापि च॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं हि ब्रह्म तद्धि निरूपितम्॥३१॥
वियदादि - सृष्टजगत्सापेक्षं रूपमेव तत्॥
सत्यस्य 'सच्चत्यच्चापि' व्युत्पत्तिः श्रौतीरेव हि॥३२॥
अविज्ञानञ्चविज्ञानमुभे ज्ञानात्मके मते॥
आनन्दात्मकतानन्त्यं रूपनाम्नोश्च कर्मणाम्॥३३॥
सृष्टौ विभाजनात् तेषां स्यादानन्दतिरोहितिः॥
आकाशादिषु तत्त्वेषु ह्युत्तरोत्तरजन्मसु॥३४॥
पार्थिवेष्वन्नप्राणादिकोशेषु पञ्चमेऽन्यथा॥
''**आनन्द आत्मा**''[१३] चेत्युक्त्या सर्वात्मत्वं हि द्योतितम्॥३५॥
सर्वगूढस्वरूपं यत् तत् लक्ष्यीकृत्य वर्णितम्॥
''**रसो वै स**''[१४] इति श्रुत्या रसलाभे हि निर्भयम्॥३६॥
रमणं बृहदारण्योदितं तेनैकवाक्यता॥
सृष्टी रसात्मिका लीलाचैका भक्तेषुचापरा॥३७॥
सृष्टौ हि भक्तभावानामनुसरणाद् रसालता॥
विभावाद्युद्भवाः भावाः रसशास्त्रोक्तरीतिकाः॥३८॥
हृद्भावस्य रसत्वं वै विभावादिसुभावितम्॥
जायमानोप्यतो भावो रसिकेषु रसो मतः॥३९॥
ब्रह्मणो भावयोगेन विभावितवपुष्टवधीः॥
प्रमाणं रसशास्त्रीयं रसतायां हि कथ्यते॥४०॥
सौन्दर्यमद्भुतं लोके रसस्तस्मिन्नियामकः॥
प्रेम्णः प्रेमाकर्षणाय तेन नाविन्यमश्नुते॥४२॥
पुरातनेषु सिद्धेषु देशकालादिवस्तुषु॥

अपरिच्छिन्नं परिच्छिन्नेष्वेवं हि तदुच्यते ॥४३॥
अस्तिभातिप्रियत्वं च तद्धर्माणां हि चान्वयः ॥
रूपादिषु परिच्छिन्नमात्राभिरभिव्यज्यते ॥४४॥
तेषु धर्मिब्रह्मणो वै ज्ञानाभावाद्धि मुग्धता ॥
जीवानां सा ह्यविद्यातो विद्यातो तन्निराकृतिः ॥४५॥
चतुष्पर्वैरात्मसौख्यं भक्त्या तु भजनीयगम् ॥
सौख्यं भवेद् यदा मोक्षे तत्सालोक्यादिनामभाक् ॥४६॥
भगवत्कृपाजातभक्त्या स्याच्च तस्मिन् निरुद्धता ॥
सा चैषा भक्तिरूपा वै जीवन्मुक्तिवदास्थिता ॥४७॥
तस्माद् भक्तिरसो येन ब्रह्मात्मा भगवानपि ॥
भावात्मरूपप्राकट्याद् रसात्मकतयोदितः ॥४८॥
एतन्निरूपणं तत्र श्रीमद्भागवते कृतम् ॥
"**मल्लानामशनि**"[१५] रित्यादि वचनेषु न संशयः ॥४९॥
"**कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव वा ॥**
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते"[१६] ॥५०॥
मयडत्रापि प्राचुर्ये यथानन्दमये श्रुतौ ॥
प्रियमोदप्रमोदानन्दात्मवैविध्यद्योतनात् ॥५१॥
प्रियादीनां त्रयाणां वै धर्माणाम् उद्गमात् खलु ॥
सृष्टौ सैषा हि लीला या तस्याः भक्तेः समुद्भवः ॥५२॥
भक्तेश्चाप्युद्भवो भूमौ लीलाप्राकट्यहेतुकः ॥
बीजप्ररोहवदुभयोः स्यादन्योन्यहेतुता ॥५३॥
पुष्टिभक्तिरियं तस्मात् श्रीमदाचार्यवर्णिता ॥

(पाश्चात्यसौन्दर्यमीमांसयैकवाक्यता)

सौन्दर्यमष्टभिश्चांगैरुपेतं वर्णितं परैः ॥५४॥
सौन्दर्यशास्त्रे पाश्चात्ये तत्समन्वयचिन्तने ॥

प्रतिनिधिश्चाभिव्यक्तिः नूतनत्वं परंपरा ॥५५॥
रसालता च लीलानुभावकत्वं तथा पुनः ॥
युक्तांगैरंगिनो व्यक्तिरनुभूतौ चमत्कृतिः ॥५६॥
अनिरुक्तानुभूतेश्च सौन्दर्यमभिव्यज्यते ॥
तदेतद् भक्तिभावेन भजनीयानुभवेन वै ॥५७॥
भक्तानां भगवत्सौन्दर्यानुभूतौ न किं भवेत् ॥

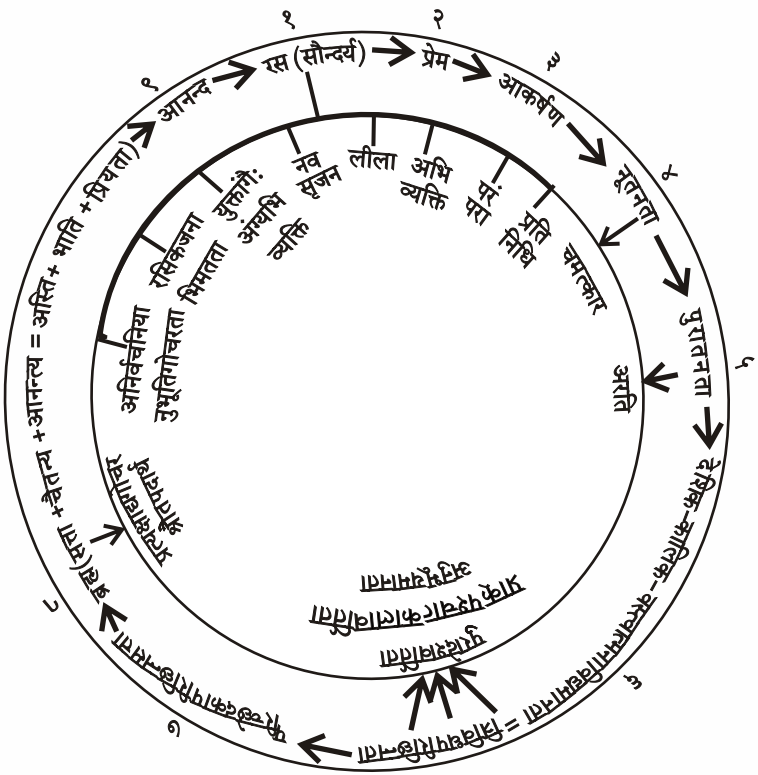

तालिकासन्दर्भः

१. विभावानुभावसंचारिभावनिष्पन्नस्थायिभावगोचरता.

२. नवारे सर्वस्य...सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति. (बृह.उप.२।४।५)

३. सच्चत्यच्चाभवत् निरुक्तंचानिरुक्तं निलयनंचानिलयनं च सत्यंचानृतं च सत्यम् अभवत्. (तैत्ति.उप.२।६)

४. तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय, सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन यदास्ते, ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि रूपाणि... नामानि...कर्माणि बिभर्ति. (तैत्ति.आर.३।१३।२ / चिद्.उप.१२।७)

५. कथमसतः सज्जायेत सत्त्वैव सौम्य इदमग्र आसीद् एकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय, सवै नैव रेमे, स द्वितीयमैच्छत्. (छान्दो.उप.६।२।२)

६. नाभ्या आसीद् अन्तरिक्षं शीष्णौ द्यौ समवर्तत पद्भ्यां भूमिं दिशः श्रौत्रात् तथा लोका अकल्पयन्, पुरुषएवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् उतामृतत्वस्येशान यदन्नेन अतिरोहतिः, पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि त्रिपाद् उर्ध्व उदैत् पुरुष. (ऋक् .संहि.१०।९०।१७)

७. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म. (तैत्ति.उप.२।१)

८. ब्रह्म ते ब्रवाणि, कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति? (कठोप.१।२।२०-२१)

९. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्, तस्य प्रियमेव शिरः... आनन्द आत्मा, यो वै भूमा तत् सुखं. (तैत्ति.उप.३।६)

(उपसंहारः)

तस्माद् अनाद्यनन्तस्य ब्रह्मणोऽपि रसात्मता॥५८॥
अतश्चोपनिषत्सूक्तरसस्यैक्यमथेतरत्॥
नाट्यशास्त्रोदितरसेनेति मिमांसिते सति॥५९॥
ऐक्यं नैक्यविरोधेन किन्त्वन्योन्यसहिष्णु यत्॥
तादात्म्यमेव विज्ञेयमित्येको निर्णयो ध्रुवः॥६०॥
निरूपितो मयाचार्यलब्धबुद्ध्या नचान्यथा॥

दीक्षितात्मजश्यामेन स्वीयसन्तोषहेतवे ॥६१॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण
उपनिषदुक्तरसस्य नाट्यशास्त्रोक्तरसेन
ऐक्यमनैक्यं वेति रसमीमांसा
सम्पूर्णा

१. सौन्दर्य ←——→ प्रेम / प्रिय ←——→ सुन्दर - द्वैतघटितविषयविषयिभावः.

२. परस्परजन्यजनकता / धर्म-धर्मिता

३. ब्रह्म = (क) एकस्यानेकीभवनं तत्त्वोपदेशगम्यं (ख) अनेकेषु एकत्वनिदिध्यासनम् साधनोपदेशगम्यम्.
(क) तस्माद् (अपरिच्छिन्नसत्यज्ञानाभ्यां) वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः-वायुरग्निजलपृथिवीऔषधि-अन्न-अन्नमय पुरुषः.
(ख) अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय - आनन्दमय (रस) = (प्रिय-मोद-प्रमोद-आनन्द-ब्रह्म).

४. सच्चत्यच्चाभवत् निरुक्तं चानिरुक्तं निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चानृतं च सत्यमभवत् अतः द्वै वा ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च.

५. अतः एकरसे अनेकरसाविर्भावः सौन्दर्यम् अनेकरसात्मके जगति एकस्यानुभूतिः सौन्दर्यम्.
अतः सति निरुक्ते निलयने विज्ञाने सत्ये त्यतः अनिरुक्तस्य अनिलयनस्य अविज्ञानस्य अनृतस्य आविर्भावः चमत्कारः.
त्यति अनिलयने अनिरुक्ते अविज्ञाने अमृते सतः निरुक्तस्य निलयनस्य विज्ञानस्य सत्यस्य साक्षात्कारः चमत्कारः.

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.भाग.पुरा.३।९।१४,११

२.भाग.पुरा.१०।१८।५

३.भाग.पुरा.१०।४०।८

४.बृह.उप.४।५।६

५.भाग.पुरा.३।९।४२

६.द्रष्ट.बृह.उप.१।४।३

७.बृह.उप.२।३।१

८.तैत्ति.उप.२।६

९.तैत्ति.आर.३।१३।२ / चिद्.उप.१२।७

१०.छान्दो.उप.६।२।२

११.बृह.उप.४।५ - ८

१२.ऋक् .संहि.१०।९०।१७

१३.तैत्ति.उप.२।५

१४.तैत्ति.उप.२।७

१५.भाग.पुरा.१०।४०।१७

१६.भाग.पुरा.१०।२६।१५

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ कृष्णभक्तेः रसात्मकत्वनिरूपणम् ॥

धमार्थकाममोक्षेभ्यश्चातीता रसरूपिणी ॥
भक्तिः पञ्चमपुरुषार्थतयैव विदिता मता ॥१॥
साफल्ये वाथ वैफल्ये संयोगे विरहेऽथवा ॥
भजनीयस्य भक्तिर्वै अविशिष्टावतिष्ठते ॥२॥
यावाननुग्रहस्तस्य जीवे भक्तिस्तु तावती ॥
यावती सा परस्मिन्वै तावांस्तस्मिन्ननुग्रहः ॥३॥
पुष्ट्या पुष्ट्यै जायमाना रतिर्या निरुपाधिका ॥
परमात्मनस्त्वात्मरतेः लीलारूपोऽत्र विस्तरः ॥४॥
तत्पुष्टिबीजभावात्मा यस्मात्प्रेमांकुरायते ॥
आसक्तितरुरूपा वै फलं तु व्यसनं मतम् ॥५॥
बीजभावसेचनार्थे सत्संगशरणागती ॥
समर्पितात्मनो नवधाभक्तिस्तद्रूपसंगतिः ॥६॥
तत्राहंममतारूपतनुवित्तजसेवनात् ॥
सर्वत्र ब्रह्मबुद्धेर्हि स्वेष्टरूपविभावनात् ॥७॥
चित्तस्य तत्प्रवणतायां मनसस्तत्र लग्नता ॥
ततः स्वरूपलीलादेः स्यान्मनोरुद्धतापि हि ॥८॥
चेतस्तत्प्रवणतैव सेवा भक्त्यात्मिका मता ॥
तनुवित्तजसेवातः चेतस्तत्प्रवणं भवेत् ॥९॥
सेवाक्रियास्वतो भक्तिस्थायिभावो ह्यपेक्षितः ॥
बीजभावरुच्यभीष्टकृष्णमूर्तेर्विभावता ॥१०॥
उद्दीपनविभावास्तु कृष्णलीलागुणादयः ॥

भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डरश्मिरूपास्तदुक्तयः ॥११॥
एतैर्भक्त्यनुभावात्मरूपिणी कृष्णसेवना॥
एवं हि रसरूपत्वं भक्तेः सिद्ध्यति सर्वथा॥१२॥
इत्येषा प्रक्रिया भक्तेः श्रीमदाचार्यसम्मता॥
तत्कृपालब्धबुद्ध्यात्र श्यामेन प्रकटीकृता॥१३॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
कृष्णभक्तेः रसात्मकत्वनिरूपणम्
सम्पूर्णम्

।। परिशिष्टम् ।।

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ पूर्णानन्दपूर्णकामनामनिरूपणम् ॥

प्रणम्य श्रीमदाचार्यं कृष्णास्यानन्दरूपिणम् ॥
'पूर्णानन्दपूर्णकाम'नामव्याख्यां समारभे ॥१॥

(शंका)

ब्रह्मण्यानन्दरूपे हि का वेयं पूर्णता मता? ॥
व्यावर्त्यं तेन किं ज्ञेयं तस्माद् व्यर्थं विशेषणम् ॥२॥

(समाधानं)

इति चेत् तद्धि पूर्णत्वं लीलाकर्त्रोर्विभेदतः ॥
द्विविधं सच्चिदानन्दानन्दप्राचुर्यभेदतः ॥३॥

(सच्चिदानन्दलीला)

"**सत्यं ज्ञानमनन्तं**"[१] तद् 'ब्रह्म' श्रुत्यादिगोचरम् ॥
देशकालवस्तुरूप - परिच्छेद - विवर्जितम् ॥४॥
सच्चिदंशसमुद्भूत - पञ्चकोशैः सदावृतम् ॥
स्वान्तःस्थनामरूपाणां कोशेष्वेषु प्रदर्शकम् ॥५॥
जडजीवेशरूपैर्हि लीलाद्भुतरसात्मकम् ॥
सच्चिदानन्दरूपांशैः निजानन्दे रतं सदा ॥६॥

(आनन्दमयलीला)

सर्वकर्ता सर्वगूढो य आनन्दोऽत्र वर्णितः ॥

तस्य पूर्णत्वमप्यत्र स्वात्मप्राचुर्यमूलकम्॥७॥
मयटा बोधितं चात्र ह्यानन्दमयशब्दितम्॥
तस्यानुभावरूपं यत् प्रियत्वं सहजं हि तत्॥८॥
सा प्रीतिर्हि चिदंशेषु वरणान्नैकट्यतोऽपि वा॥
तत्र मोदप्रमोदौ च विभावद्वयरूपिणौ॥९॥
मोदः प्रेम्णोद्दीपनं वै प्रमोदोऽस्यावलम्बनम्॥
आलम्बनेनोद्दीपितप्रेम्णो ह्यानन्दधर्मता॥१०॥
पुरुषोत्तमस्यानन्दः स्वमहिम्न्यक्षरात्मके॥
तस्य स्नेहरसात्मत्वं श्रुतौ भागवतेऽपि च॥११॥
"**न वा सर्वस्य कामाय प्रियं सर्वं हि चात्मनः॥**
कामायैव प्रियं"[२] श्रुत्या "**अहमात्मात्मनां तथा**॥१२॥
प्रेष्ठः सन् प्रेयसां चापि रतिं कुर्यादतो मयि॥
देहादौ यत्कृता प्रीति"[३] रित्येवं वचनात्तथा॥१३॥
निरूपाधिकप्रेमैकरूपः सोऽत्र निरूपितः॥
पूर्णानन्दतया चैकोऽनैक्यं लीलाभिकामितम्॥१४॥

(तत्र विचारणीयं)

इदमत्र विचार्यं स्याद् आनन्दविषये पुनः॥
अनल्पं हि सुखं यद्वा दुःखेनापि विवर्जितम्॥१५॥
'आनन्द'पदवाच्यं वा भिन्नं द्वाभ्यां भवेत्तु किम्?॥

(तत्रोच्यते)

सुखं वा यदि दुःखं वा नीतिधर्मकृतं मतम्॥१६॥
जीवगं तज्जडे नैव न हि जीवान्तर्यामिणि॥
स्वपरप्रतिभासस्याप्रसक्तेः न घृणोद्भवः॥१७॥

(पंचकोशेषूद्गतयोः सुखदुःखयोः निरूपणम्)

तदभावे न वै नीतिधर्मप्रत्ययसम्भवः ॥
रसात्मके दुःखसुखे ते हि चात्मसमुद्गते ॥१८॥
क्रियोप्राणोत्थिते येहि सुखदुःखे स्वभावतः ॥
मनोबुध्युत्थिते चैव सुखदुःखेऽभिमानतः ॥१९॥
आत्मानन्दोत्थिते ये तु सुखदुःखे रसात्मके ॥
नैव चाल्पसुखस्यातो ह्यानन्दत्वविकल्पना ॥२०॥
तदुत्थदुःखसुखयोश्चातो न रसरूपता ॥

(आनन्दात्मकसुखदुःखयो रसत्वोपपादनम्)

मोदप्रमोदौ विज्ञेयौ विभावौ द्विविधावपि ॥२१॥
अनुभावः प्रियत्वं वा प्रीतिर्वा शिर उच्यते ॥
स्थायिभावोऽत्र चानन्दोऽपरिच्छिन्ने हि ब्रह्मणि ॥२२॥
कृत्वा मञ्चं सदंश स्वं चिदंशान् प्रेक्षकान् पुनः ॥
क्रीडत्यात्मनानन्दः स्वात्मनि स्वात्मने पुनः ॥२३॥
सच्चिदानन्दब्रह्मैव सर्वरूपधरं हि तत् ॥
सर्वशक्तिस्वतन्त्रं वै कर्तुञ्चाकर्तुमेव च ॥२४॥
कर्तुं वान्यथा शक्तं सर्वदोषविवर्जितम् ॥
सदंशे रूपप्राकट्यं चिदंशे नामजन्मतः ॥२५॥
आनन्दांशे कर्मणां वै प्राकट्यं स्वीयलीलया ॥
तस्मान्मोदप्रमोदाभ्यां प्रीतेर्हि जनकत्वतः ॥२६॥
सत्यज्ञानान्तरूपे ब्रह्मण्यानन्दपूर्णता ॥
एवं द्वेधा हि पूर्णत्वम् आनन्दे प्रतिपादितम् ॥२७॥
'पूर्णकामं' पदेऽप्येवं समासः को भवेदिह ॥
पूर्णश्चासौ हि कामश्च न नामस्वनन्वयाद् ॥२८॥
पूर्णे पूर्णस्य कामोऽपि नैव तेनैव हेतुना ॥

बहुव्रीहीसमासोऽत्र कामः पूर्णो हि यस्य सः॥२९॥
पूर्णत्वं कीदृशं तत्र तद्विमर्शोऽत्र क्रियते॥
निरानन्दस्य कामस्तु दुःखायैव विनिश्चितः॥३०॥
"**रजोगुणो महापाप्मा विध्येनमिह वैरिणम्**"[४]॥
गीतायामेवमुक्तत्वान्नेदृशी पूर्णकामता॥३१॥
निष्कामपुरुषस्येहानन्देन सहितस्य वा॥
रहितस्य वा विरुद्धत्वान्नैव कामे हि पूर्णता॥३२॥
सानन्दस्यैव यः कामः सोऽत्र पूर्णः प्रकीर्तितः॥
"**सोऽकामयद् बहुस्यां**"[५] वै श्रुतिप्रोक्ता सकामता॥३३॥
काम्याप्तौ स्याद् निरस्ता या यदप्राप्तौ च दुःखिता॥
जीवेष्वेव विरोधोस्ति कामानन्दयोः सदा॥३४॥
परमात्मनि विरोधो न सत्यकामाप्तकामतः॥
जीवेषु कल्पनातीतो लीलारूपोऽत उच्यते॥३५॥
सत्ये ज्ञाने ह्यनन्तेऽतो ब्रह्मणि लीलया मतः॥
पूर्णात्पूर्णस्योद्गमस्तु तन्न्यायोऽत्र समाश्रितः॥३६॥

(लीलात्मककामकृतभेदाः)

भवितुं सच्च त्यच्चैवं सत्यांशेन स्वयं पुनः॥
निलयनञ्चानिलयनं चैवं कामस्य पूर्णता॥३७॥
ज्ञानांशेनानिरुक्तञ्च निरुक्तं भवितुं तथा॥
विज्ञानञ्चाप्यविज्ञानं कामस्यैवं हि पूर्णता॥३८॥
सत्यानृताभ्यां वै नामरूपाभ्यां हि निजात्मनः॥
व्याकृतिः सर्वभवनं लीलारसतया मता॥३९॥
कामेऽस्मिन् पूर्णता यस्मादानन्दोत्था मता हि सा॥
तस्माद् "**रसो वै स**"[६] श्रुतावुक्ता चानन्ददायिता॥४०॥

(ईदृक्पूर्णानन्दपूर्णकामत्वयोराचार्येऽनुगमः)

तत्र भेदमतिस्तावत् संभवेद् भीतिवर्धिका॥
अभेददर्शने नूनं पदं तदभयस्य वै॥४१॥
इति श्रुतेस्तथा"**ऽऽचार्यदेवो भव**"[७] विधानतः॥
पूर्णानन्दपूर्णकामनामाचार्येऽतिदिश्यते॥४२॥
तदास्याग्नेः स्वरूपत्वादपि तद्व्यपदेश्यता॥
सर्वोत्तमानाम् आचार्यनाम्नां द्वेधा गती मते॥४३॥
तत्त्वकर्तव्ययोः पुष्टिमार्गस्येह निरूपणम्॥
नामसु बहुषु ब्रह्मनामसाम्योपदेशना॥४४॥
पुष्टिमार्गीयजीवानां कर्तव्योद्बोधनं वरम्॥
नामव्याजेन चाप्यत्र ग्रन्थकृद्भिः कृतं पुनः॥४५॥
"**तदुक्तमपि दुर्बोधं सुबोधे**"[८] त्यादि वाक्यतः॥
भोक्तृभावो भक्तिमार्गे भजनानन्ददायकः॥४६॥
तदाप्तिमार्गस्त्वाचार्यैः चतुश्लोक्यां स्फुटीकृतः॥
"**यदि श्रीगोकुलाधीश**"[९] पद्ये सर्वात्मना ततः॥४७॥
सानन्दस्य तु कामोऽत्र लोकवेदातिगो मतः॥
एवमाचार्यकृपया तदुक्तौ श्रद्धया तथा॥४८॥
तदंगीकृतशास्त्रेषु निष्ठयैवं नचान्यथा॥
प्रक्रियायास्तु बोधेन पूर्णतायाः विबोधनम्॥४९॥
जायते स्फुटमेवात्र तथा चेत्सफला कृतिः॥
अन्यथा किञ्चिदुक्तं चेत् क्षमन्तु दीनवत्सलाः॥५०॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
पूर्णानन्दपूर्णकामनामनिरूपणं
सम्पूर्णम्

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.तैत्ति.उप.२।१

२.बृह.उप.२।४।५

३.भाग.पुरा.३।९।४२

४.भग.गीता ३।३७

५.तैत्ति.उप.२।६

६.तैत्ति.उप.२।७

७.तैत्ति.उप.१।११।२

८.सर्वो.स्तो.४

९.चतु.श्लो.३

॥श्रीकृष्णाय नमः॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः॥

॥ वाक्पतिविबुधेश्वरनामनिरूपणम्॥

वाक्पतिर्वल्लभोऽस्माकं वाग्गतिस्तस्य वाक्षु वै॥
वाग्रतिस्तु तदुक्तेऽर्थे श्रीकृष्णे परमात्मनि॥१॥
प्रणम्य वाक्पतिं तं वै वागर्थं नन्दनन्दनम्॥
तन्नामनिहितानन्दं लब्धुं व्याख्यानम् उच्यते॥२॥

(उपक्रमः)

सत्यं ज्ञानमनन्तञ्च ब्रह्मेत्थं श्रुतिवर्णितम्॥
वस्तुना देशकालाभ्यां नैव तत् परिच्छिद्यते॥३॥
रूपनाम्नोः कर्मणां च ब्राह्मैक्यं श्रुतिगोचरम्॥
त्रैविध्यं ब्रह्मणो रूपनामकर्मात्मकं तथा॥४॥
अवाच्यत्वादनिर्वाच्यं श्रुतौ च विनिरूपितम्॥
प्राक्सृष्टेः तद्धि पश्चात्तु नामरूपादिधारकम्॥५॥
"सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो
नामानि कृत्वाभिवदन्"[१] यदाऽभवत्॥
तदास्य जाता खलु सर्वरूपता
तद्बोधरूपापि च सर्वनामता॥६॥
ज्ञानं नु सार्वज्ञ्यतया प्रवृद्धम्
ऐश्वर्यवीर्यादिगुणैः समृद्धम्॥
ध्रुवैर्गुणैः षड्भिरितोऽस्य नूनं
पौराणिकी भगवत्ता स्फुटाभूत्॥७॥
प्रत्येकयोः रूपनाम्नोः कर्तृताधारते ततः॥

निर्वाच्यतापि सिद्धाऽभूत् कार्यलक्षणसम्भवात्॥८॥
स्वरूपलक्षणं "**सत्यं ज्ञानञ्चानन्तमेव**"[२] तत्॥
"**यतो वा जायते यस्मिन् स्थीयते लीयते**"[३]ऽपि च॥९॥
कार्यलक्षणसिध्यैवं स्ववाच्यत्वं समाश्रितम्॥
ज्ञाता स सर्वरूपाणां वक्ता नाम्नां सएव च॥१०॥
वाक्पतित्वं च तस्यैवं श्रुतावेव समर्थितम्॥
'भू'रिति व्याहरन् भूमिं 'भुवम्' उच्चारयन् पुनः॥११॥
अन्तरिक्षं हि 'स्वं'चोक्त्वा दिवं चासृजदेव सः॥
व्याहृतेर्बीजमोंकारं सृष्टिस्थितिलयार्थकम्॥१२॥
ॐकारवाच्यतापन्नं कार्यलक्षणबोधकम्॥
सृष्टिः स्वभावतो नैषा किन्तु संकल्पतो मता॥१३॥
"**तपस्तप्त्वाऽसृजत् सर्वम् इदं**"[४] श्रुत्या निरूपणात्॥
नामनी ब्रह्मणश्चैते वाक्पतिविबुधेश्वरौ॥१४॥

(श्रीमदाचार्ये नामातिदेशः)

निजाचार्येऽतिदिश्येते श्रुत्यादेशानुवर्तनात्॥
शुद्धाद्वैतमते सर्वं तदात्मकतया मतम्॥१५॥
शास्त्राचयनकर्तृत्वाद् आचार्यश्चातिदेशभाक्॥
अंशांशिनोर्हि तादात्म्यात् कृष्णास्यत्वात् तदंशता।१६॥
आचार्यनामनी चैते प्रभुभिर्विनिरूपिते॥

(तयोः संगति)

अवाच्यपूर्णानन्दस्य पूर्णकामस्य कामतः॥१७॥
जाता सृष्टिरियं तेन वाक्पतिर्विबुधेश्वरः॥
नाम्नोर्हि पूर्वनामभ्यां संगतिश्चोपपद्यते॥१८॥
वागात्मकं नाम यद्वद् रूपं बोधात्मकं तथा॥

रूप्यते मनसा बुद्ध्या व्युत्पत्त्यैवं प्रसिध्यति॥१९॥
नामरूपे हि संकल्पसामर्थ्याभ्यां कृते मते॥
'प्रज्ञा'पर्यायरूपो हि 'माया'शब्दो मतो यतः॥२०॥
श्रुत्युक्तं बहुभवनं तद् ब्राह्मिकं नतु मायिकम्॥
मायया हि स्वमात्मानं सृष्टवान् स्वात्मकं हि तत्॥२१॥
''**इन्द्रो मायाभि**''[५]रित्युक्त्या ''**बलज्ञानक्रियाश्च ताः**॥
स्वाभाविक्यः परास्तस्य शक्तयः[६] समुदीरिताः॥२२॥
तथात्वात् तस्य शक्तीनां मृषात्वं नैव सम्भवेत्॥
सामर्थ्यं भवितुं सर्वं तस्य ज्ञानक्रियावतः॥२३॥
नैवोपाधिकत्वं स्यात् तादात्म्यस्यैव वर्णनात्॥
''**ऐतदात्म्यमिदं सर्वं**''[७] श्रुतिसिद्धं नचान्यथा॥२४॥
स्वात्मनि स्वात्मिका सृष्टिर्वाचामपि मता तथा॥

(तत्रैकाशंका)

नैवं वाच्यं जागरुके शब्दाप्रामाण्यवादिनि॥२५॥
निर्विकल्पकज्ञानस्य प्रामाण्यं वदतां मते॥
शाब्दं ज्ञानमप्रमाणम् अर्थेतरजननाद् मतम्॥२६॥
नामात्मिकानां वाचां वै आविद्यकतया पुनः॥
मृषात्वाद् ब्रह्मतादात्म्ये मृषात्वं ब्रह्मणो भवेद्॥२७॥

(तत्र समाधानम्)

शब्दाप्रयोक्तृणां तत्र कानने पशुपक्षिणाम्॥
खाद्याखाद्यविकल्पाभ्यां खाद्यबुद्धिर्हि दृश्यते॥२८॥
इन्द्रियैः रूपगन्धादिभेदजन्येदृशी मतिः॥
तत्सामान्याद् मनुष्याणां मतौ शब्दान्वयेऽपि हि॥२९॥
विकल्पानां भासनेऽपि न वै शब्दैकभास्यता॥

न बुद्धानुगमात् संघे विहारोऽप्यनृतो मतः ॥३०॥
कुतश्चाक्षुषप्रत्यक्षानुगमाच्छाब्दो भ्रमायते ? ॥

(ननु)

वस्तुद्रष्टुस्तु संकल्पविकल्पौ यौ न वस्तुगौ ॥३१॥
शाब्दज्ञाने तदुपयोगाद् वाचां मिथ्यात्वमिष्यते ॥

(तत्समाधानम्)

इति चेत् तन्नवै युक्तं प्रतीत्योत्पादवादिनः ॥३२॥
बुद्धेश्चार्थात्तु जन्या या विकल्परहिता प्रमा ॥
शाब्दैन्द्रियैकविज्ञानमपि तद्वत्कुतो नहि ॥३३॥
मृषावेदकता वाचां नियता नहि दृश्यते ॥
विनापि शब्दवेधेन हीन्द्रिये भ्रान्तिहेतुता ॥३४॥
दोषैरनेकैः स्वगतैः विशेषास्फुरणादपि ॥
शब्दाननुगमेपीत्थं न वाचामप्रमाणता ॥३५॥
सदोषत्वे मृषात्वन्तूभयत्रापि सम्भवेद् ॥
निर्दोषत्वे तु सामान्यं बोधकत्वं द्वयोरपि ॥३६॥
शब्दोच्चारणमात्रेण अर्थोत्पत्तावशक्तितः ॥
शब्दानां भ्रान्तिहेतुत्वं स्वीकृतं तन्न चान्यथा ॥३७॥
धम्मबुद्धादिशरणं भवेन्नूनमपार्थकम् ॥
वाचामत्राप्रमाणत्वे शरणेनैव मानता ॥३८॥
वाच्यभागी स विज्ञेयो वाचामाश्रयणं विना ॥
वाचामाश्रयणेनैव वागप्रामाण्यवेदकः ॥३९॥
वागप्रामाण्यन्तु वाण्यैव साधने व्याहतिः स्फुटा ॥
वचोभिस्साधने सिद्धा वाण्यास्तत्र प्रमाणता ॥४०॥
स्वनामकर्तृप्रामाण्यात् सिध्येत् सिद्धार्थता यदि ॥

ईशर्षीणां च प्रामाण्यात् वाचां सिद्धा हि सार्थता॥४१॥

(तत्राशंका)

ननु संवृतिप्रामाण्यं न तत् स्यात् पारमार्थिकम्॥

(समाधानम्)

संवृतेरप्रमाणत्वं यदीष्टं परमार्थतः॥४२॥
तन्न्यायात्संवृतेश्चापि सिद्धैव परमार्थता॥
संवृतेरप्रमाणत्वं मतञ्चेदपरमार्थतः॥४३॥
परमार्थता भवेत्सिद्धा संवृतेर्हि कुतो नहि?॥
वाक्पतित्वं ब्रह्मणोऽतो ब्रह्मज्ञे ब्रह्मताकृतम्॥४४॥
ब्रह्मापरोक्षज्ञानेन रहिते श्रौतबोधजम्॥
ज्ञानं परोक्षरूपं हि ब्रह्मवादात्मकं मतम्॥४५॥
तदुद्बोधनेनैव बोद्धृणां विबुधेश्वरः॥
तेनात्र वस्तुनिर्देशः कर्तव्यस्योपदशेना॥४६॥

(किञ्च)

बृहत्याः ब्रह्मणश्चापि चतुष्पात्त्वमुदीरितम्॥
ऋक्संहितायां[८] तच्चान्योन्यानुरूपत्वहेतुकम्॥४७॥
निर्विकल्पस्य प्रामाण्यमर्थसारूप्यहेतुकम्॥
बृहत्या ब्रह्मणश्चापि सारूप्यात् परमार्थता॥४८॥

(तत्रैकाशंका)

श्रुतौ सामान्यसारूप्यमुभयोः वर्णितं यथा॥
वैलक्षण्यं त्वेतयोस्तु निजाचार्यैर्निरूपितम्॥४९॥

(तथाहि)

रूपसर्गः सदंशेषु नामसर्गः चिदात्मनि॥
'कर्ता - कारयिता'वाक्यात् कर्मसर्गोऽन्तरात्मसु॥५०॥
स्थूला चान्तवती रूप - सृष्टिस्तु विकृता जडा॥
नामसृष्टिरनन्ता च सूक्ष्मा चाविकृता तथा॥५१॥
कूटस्था बोधरूपा हि वैलक्षण्यमतोत्र हि॥

(तत्समाधानम्)

वैलक्षण्यं यथा सिद्धं तथान्यदपि वर्णितम्॥५२॥
प्रत्यायको नामसर्गः रूपप्रत्यायनञ्च तैः॥
बुद्धस्यापि हि मूर्त्यादिकृतप्रत्यायनं यथा॥५३॥
न चान्यमूर्तेस्तच्छक्यं वैरूप्यादेव हेतुतः॥
पाषाणपञ्चधातूनां वैरूप्यमप्रयोजकम्॥५४॥
प्रमेयन्तु प्रमाणस्य कारकत्वेन द्योतितम्॥
प्रमाणञ्च प्रमेयस्य ज्ञापकत्वेन वर्णितम्॥५५॥
वाक्पतेर्हि यतश्चैवं विबुधेश्वरता मता॥
अन्यैर्बोद्धुमशक्यत्वात् कृपयैवं निरूपितम्॥५६॥
यदत्रानुचितं किञ्चित् तद् ममैव गुरोर्नहि॥
अस्ति यद्युचितं किञ्चित् तद् गुरोरेव मे नहि॥५७॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
वाक्पतिविबुधेश्वरनामनिरूपणं
सम्पूर्णम्

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.तैत्ति.आर.३।१२।७
२.तैत्ति.उप.२।१
३.तैत्ति.उप.३।१
४.तैत्ति.उप.२।६
५.बृह.उप.२।५।१९
६.द्रष्ट.श्वेता.उप.६।८
७.छान्दो.उप.६।८।७
८.ऋक्.संहि.३।३।२२-१०।९०।३

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ कृष्णनामसहस्रस्येत्यादिनामत्रयस्य व्याख्या ॥

(श्रीगोविन्ददासपदत्रयम्)

कृष्णनामसहस्रस्य वक्ताके गुन गाइये ॥
बिनु साधन कलियुगमें अष्टमहासिद्धि पाइये ॥१॥
अन्य ध्यान सब छांड़ि श्रीवल्लभ उर लाइये ॥
हरिवदनानलसुमहिमा काहूसों न जनाइये ॥२॥
सुभगमूरति पदसरोजसों लगन लगाइये ॥
कहत 'गोविन्द' जोरि कर विनंती इनहीकों जु सुनाइये ॥३॥

भक्तपरायण भूतल प्रगटे ॥
निजजनके कलिकालघोरमें बिनु साधन महा-अघ कटे ।१॥
यह छबि अबहि बनि आई भरि-भरि नैंनन निरखों ॥
सुभग मूरतिको रूपसुधामृत पान करों हृदयमें रखों ॥२॥
सुजस सुनों नाम कीर्तनको सुमरहु आठों जाम ॥
'गोविन्द' श्रीवल्लभपर ले वारों कोटिक काम ॥३॥

भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यनिरूपक
वचनामृत श्रवन सुनत मृत जिवाए निजजन ॥
अंघ्रिसरोरुह हृदय धरों और सब परिहरों
चित चिन्तन करों सुजस सुनों श्रवन ॥१॥
जैसी तुम कृपा करी वैसी कोउ करे नांही
बिन साधन कलिमें उद्धारे अधमगन ॥
सुभग मूरति बिन और न सुहात कछु

प्रेम उदधि मध्य मगन भयो मन॥२॥
मनुष्य देह पाइके श्रीवल्लभके शरण बिना
कोटिक साधन कीने वृथा होत आयुषधन॥
दैवीजन जीवन श्रीवल्लभपदरजधन
श्रीविट्ठल करुणातें राखहु 'गोविन्द' पन॥३॥

कृष्णनामसहस्रस्य वक्तारं वल्लभं मुदा॥
भक्त्याचारोपदेशार्थं नानावाक्यनिरूपकम्॥१॥
नत्वा तदुक्तगूढार्थं तं वै भक्तपरायणम्॥
वर्णयामि कृपालब्धबुद्धच्या तन्नामवर्णने॥२॥
लोकसिद्धस्य चार्थस्य योगोऽलौकिककर्मणि॥
लोकसिद्धस्य कामस्य लौकिकत्वनिवर्तकः॥३॥
तेनैव जीवन्मुक्तत्वमर्पिते श्रीहरौ पुनः॥
चतुर्णां पुरुषार्थानां भक्तेः पञ्चमता तदा॥४॥
जीवन्मुक्तताश्रद्धावती भक्तिः परात्मनि॥
सिद्ध्यते चेदुत्तरं हि पूर्वपूर्वफलात्मकम्॥५॥
एवं भागवती भक्तिः फलानां हि फलात्मिका॥
तस्मिन्निरुद्धता चापि ब्रह्मणि परमात्मनि॥६॥
भगवति श्रीकृष्णरूपे सैव सर्वात्मभावता॥
बाह्याभ्यन्तस्तथा चोर्ध्वं भूतले सहवर्तिता॥७॥
मुक्तिस्पृहाविरहिताया: भक्तेरेवोपदेशना॥
नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरस्तवः॥८॥
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम्॥
विद्याविद्ये हरेः शक्ती हरिरत्यंगतां गते॥९॥
भवेतां वै तदा कृष्णलीलायामनुरूपता॥

कृष्णस्य ब्रह्मता सर्वनामरूपादिधारिता॥१०॥
परमात्मताचास्मासु भावालम्बनरूपता॥
पूर्वस्य दृष्टसंवादोऽनन्तत्वान्नैव शक्यते॥११॥
उत्तरस्यान्तरस्यात्र संवादापेक्षितापि नो॥
पूर्णानन्दस्य यावाप्तिः पुष्टिभक्तिर्मता त्विह॥१२॥
सुखाद्यान्तरानुभूतौ संवादो नैव चैष्यते॥
तस्मात्तु तस्य लीलायाः कथासेवे हि सिद्धयतः॥१३॥
तादृग् यद् जीवनं तत्तु तत्त्वजिज्ञासुताकृतं[१]॥
समर्पणे स्वस्वीयानां नैर्गुण्यं ब्रह्मतैव हि॥१४॥
तदर्थं यमुनास्तोत्रं नैर्गुण्योद्भवनाय वै॥
तेन दोषनिवृत्तिर्या तया च भगवद्रतिः॥१५॥
तया सकलसिद्धिश्च सन्तोषश्च परस्तथा॥
तुष्टे स्वभावविजयो सैषा चोद्धारप्रक्रिया॥१६॥
उपदिष्टा कलौ सृष्टौ कृष्णलीलानुभाविका॥
निःसाधनफलात्मत्वं भाते सेव्ये हि सर्वदा॥१७॥
साधनेषु निजाहंता फलेषु ममता तथा॥
निवृत्त्या चोभयोः सिद्ध्येद् पुष्टिभक्त्यंगता दृढा॥१८॥
कृष्णनामसहस्रस्य वक्तुरेवं हि स्तुत्यता॥
श्रीगोविन्ददासोक्ता विज्ञेयैतत्पदे पुनः॥१९॥
जगतोऽस्य तत्कार्यत्वभानाद् भक्तिर्न तादृशी॥
यादृशी तस्य लीलात्वज्ञानाद् भवति जीवगा॥२०॥
तस्मात् कृष्णस्य दशविधलीलावैशिष्ट्यज्ञानतः॥
प्रादुर्भवति या भक्तिः सा स्याद् नाम्नां सहस्रतः॥२१॥
भागवतात् तदुद्धारो भक्त्योद्धारार्थमेवहि॥
उद्धारः सगुणे विश्वे स्वस्य नैर्गुण्यसंस्थितिः॥२२॥

नैर्गुण्यभावसरणी यमुनातो हि मंगलम्॥
सकलानां हि सिद्धीनां हेतुस्तद्रतिवर्धिनी॥२३॥
प्रतिबन्धनिरासेनानुभूतियोग्यकारिणी॥
तद्धर्मधारिणी सैव तत्सम्बन्धप्रदायिनी॥२४॥
स्वसेवनाद् गोपिकावत् तत्प्रियत्वकरी सदा॥
सम्पादिका तनुनवनवतनुत्वभिदा च सा॥२५॥
लीलासामयिकश्रमजलसम्पर्कदायिनी॥
इत्थं भाग्यवतां भूमौ सिद्धिः विभ्वनुग्रहात्॥२६॥
देहलीदीपकन्यायाद् नाम्नोस्त्यन्वयो मतः॥
सहस्रनामवक्तृत्वे हेतुर्भक्तपरायणः॥२७॥
तथैव भक्त्याचारस्योपदेशेऽपि युज्यते॥
तदेव सुयशो ह्यत्र श्रवणीयं विशेषतः॥२८॥
नाम्नश्चैतस्याष्टयामे कीर्तनीयत्वम् उक्तवान्॥
तुच्छीकृतं कोटिकामं नाम श्रीवल्लभस्य वै॥२९॥
गोविन्ददासः पदेऽत्र नामव्याख्यानामन्तरा॥
"**जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्॥३०॥**
नैवार्हत्यभिधातुं त्वामकिञ्चनगोचरम्"[२]॥
कलिस्त्वघप्रधानोऽपि न भक्तेः बाधको मतः॥३१॥
सर्वोद्धारककृष्णो हि निःसाधनफलात्मकः॥
निःसाधनजनोद्धारकृपाव्यापाररूपता॥३२॥
निःसाधनभावरूपा भक्तिः प्रादुर्भवत्यतः॥
तस्माद् भक्तिविरोधित्वान्मदो भावविनाशकः॥३३॥
अतोहि कृष्णनैर्भर्यं भक्तिरूपोपपादकम्॥
स्ववंशेस्थापिताशेषमाहात्म्यस्मयवारकः॥३४॥
"**तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित्॥**

परिचर्या सदा कुर्यात् तद्रूपं तत्र स्थितम्''[३] ॥३५॥
एवञ्चाग्रिमेष्वेव गुरुत्वस्य निरासनात्॥
कलेर्जातमहाघानां कर्तनं तद्धि सर्वथा॥३६॥
स्ववाग्रूपेण विद्यमानोऽधुनापि स्वोपदेशतः॥
उद्धारकोऽस्ति सोयं श्रीवल्लभो वाल्लभस्य वै॥३७॥
तदुक्तं श्रीद्वारकेशैः यमुना विवृतौ स्वयम्॥
''अवतारदशायान्तूद्धृती रूपदर्शनात्॥३८॥
इह नामात्मकैर्ग्रन्थैः स्वदासानां सदोद्धृतिः''[४]॥
तत्रानुग्रहभाजानां कृपावैविध्यतस्तथा॥३९॥
प्रपत्तिपूजनासक्तिसेवातीर्थाटनात्मकम्॥
कृपावान्तरव्यापारवैविध्यं चानुलक्ष्य हि॥४०॥
नानोपायोपदेशार्थं नानावाक्यनिरूपणम्॥
तेन स्वमार्गे जीवानां बीजभावाविनाशनम्॥४१॥
मृतसञ्जीवनार्थं हि बार्हिमुख्यान्मृतिर्यतः॥
शिक्षाश्लोक्यां तथा चोक्तं न कृष्णे लोकवत् मतिः॥४२॥
कृष्णार्थं कृष्णसेवा या सैव पुष्टिस्वरूपिणी॥
कृष्णार्थं तत्प्रपत्तिः या सैव पुष्टिस्वरूपिणी॥४३॥
कृष्णार्थं तत्कथा वापि सैव पुष्टिस्वरूपिणी॥
कृष्णैकानुभवार्था या तीर्थसेवापि तादृशी॥४४॥
कृष्णार्था यत्र कुत्रापि पूजादेशेषु संस्थितिः॥
कृष्णार्थे वापि भक्तानां संगतिश्च मता सदा॥४५॥
कलेर्मृतस्य भगवद्भावस्योज्जीवनं पुनः॥
स्वस्थितौ स्वमुखाद् स्वस्य वाण्याप्यन्यदा मता॥४६॥
भक्त्याचारः कुतश्चोक्तो भक्ताचारः कुतो नहि?॥
ब्रूमोऽन्तरंगकर्तव्ये बहिरंगमसिद्धवत्॥४७॥

भक्ताचारो हि देहादिष्वहंकृतिकृतो मतः ॥
यावद् देहाभिमानस्तावद् वर्णाचारनित्यता ॥४८॥
नियता सापि भक्त्यर्था तन्नानुष्ठेयता स्वतः ॥
देहाभिमानशैथिल्ये तस्मिन्नंशित्वबुद्धिजः ॥४९॥
भक्त्याचारोऽप्यनुष्ठेयो नानाभावेन देशितः ॥
अंशाशिभावस्फूर्त्यात्तु तदात्मरतिनिर्गुणा ॥५०॥
सगुणेषु चित्ताहंकारमनोबुद्धिषु व्यज्यते ॥
चेतस्तत्प्रवणतारूपा सेवा सा च मानसी ॥५१॥
आत्मप्रपन्नता दास्ये युज्येतेऽहंधिय ततः ॥
तत्सौख्यस्य तु संकल्पाः स्वस्वीयानां हि योजने ॥५२॥
लीलानामगुणादीनां विकल्पे बहुधा मतिः ॥
स्वतनुवित्तयोगेन स्वगृहे व्रजभावतः ॥५३॥
भक्त्याचारोऽन्तरंगोऽयं बहिरंगस्तथापरः ॥
भोगशृंगाररागादि शौचाचारपालनम् ॥५४॥
तत्तद्भक्तस्य देहादावभिमानपुरस्सरः ॥
भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यैः प्रबोधनम् ॥५५॥
युक्तमाचार्यवर्याणां सर्वथा चोपपादितम् ॥
श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशकमतं यया ॥५६॥
दीक्षितस्य सुतेनैवं श्यामेन वाल्लभेन वै ॥
वल्लभोक्तभागवततात्पर्यं सुप्रकाशितम् ॥५७॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण
विरचिता
कृष्णनामसहस्रस्येत्यादिनामत्रयस्य व्याख्या
सम्पूर्णा

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१. धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥
वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
(भाग.पुरा.१।२।९ - ११)

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽत्मनः॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥
(सुबो.२।९।३५)

२. भाग.पुरा.१।८।२६
३.त.दी.नि.२।२२८
४.यमुना.अन्वयबोधिनि.२२

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगोपीनाथप्रभुचरणसप्तविंशतिनामानि ॥

नमामि श्रीमदाचार्यं गोपीनाथं च तत्सुतम् ॥
सप्तविंशतिनामानि प्रवक्ष्यामि मुदान्वहम् ॥१॥

१. श्रीगोपीनाथाय नमः
२. श्रीमद्वल्लभज्येष्ठात्मजाय नमः
३. श्रीमतीमहालक्ष्मीगर्भोदधिचन्द्राय नमः
४. आश्विनकृष्णाद्वादश्यां गृहीतजन्माय नमः
५. स्वमातृचरणअक्कास्तनपायिने नमः
६. वाक्पत्युच्चारित ''अंगादंगात्संभवसि हृदयादधिजायसे आत्मा वै पुत्रनामासि''[१] मंत्रश्रवणपराय नमः
७. श्रीमद्विट्ठलाग्रजाय नमः
८. पायम्माभर्त्रे नमः
९. पुरुषोत्तमजनकाय नमः
१०. लक्ष्मीजनकाय नमः
११. सत्यभामाजनकाय नमः
१२. साधनदीपिकाकर्त्रे नमः
१३. श्रीगोपालमनुजापकाय नमः
१४. श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रयात्रापरायणाय नमः
१५. कुंकुमगोपीचन्दनतिलकमुद्राधारणकर्त्रे नमः
१६. अडेलग्रामवासिने नमः
१७. सेवाभावनाश्लोककर्त्रे नमः

१८. प्रत्यहं श्रीभागवतपारायणपराय नमः
१९. स्वपितृरचितपुरुषोत्तमसहस्रनामजपपरायणाय नमः
२०. स्वपितुः 'सौन्दर्य'पद्येन स्तुतिकर्त्रे नमः
२१. निजानुजकृत 'यदनुग्रहतो'स्तुतिपद्यसंस्तुताय नमः
२२. श्रीगोवर्धनोद्धरणाय गोपीवल्लभभोगप्रवर्तकाय नमः
२३. जगन्नाथपुरीक्षेत्रयात्राकर्त्रे नमः
२४. तत्र फलाहारिमठनिवासकर्त्रे नमः
२५. स्वविभूतिदर्शकाय नमः
२६. तत्रत्य पुरोहितमुखेन 'एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं'पद्याख्या - श्रवणपराय नमः
२७. जगन्नाथक्षेत्रे नित्यलीलाप्रविष्टाय नमः

सप्तविंशतिनामानि श्रीगोपीनाथप्रभोः मुदा।।
पठनीयान्यस्मदीयैः सदा स्वाचार्यनिष्ठया।।२।।

इति श्रीगोपीनाथप्रभुचरणसप्तविंशतिनामानि
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

उद्धृतवचनसन्दर्भ

१.बृह.उप.६।४।९

उद्धृतवचनानुक्रमणिका

(अ - ऐ)

अखण्डाद्वैतभानेतु सर्वं..	(त.दी.नि.१।९१-९२)	२०
अंगादंगात्संभवसि हृदया..	(बृह.उप.६।४।९)	११३
अग्रे आसीद् ब्रह्म वेद..	(बृह.उप.१।४।१०)	४५
अत्ता चराचरग्रहणात्..	(ब्रह्म.सू.१।२।३।९)	४४
अथात आदेशो 'नेति..	(बृह.उप.२।३।६)	३
अनन्तगुणपूर्णो हि हरि..	(सुबो.का.१०।८४।५-६)	४१
अन्धन्तमः प्रविशन्ति ..	(ईशा.उप.९-११)	३७
अन्यत्र धर्माद् अन्यत्राधर्माद्..	(कठो.उप.१।२।१४-१७)	४६
अन्नाद् भवन्ति भूतानि..	(भग.गीता ३।१४-१५)	५०
अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो..	(सि.मु.४ - ५)	४४
अष्टत्रिंशे श्रुतीनां हि यथा..	(सुबो.कारि.१०।८४।८)	४१
अन्धन्तम प्रविशन्ति येऽविद्यां..	(ईशा.उप.९-११)	३७
अयं प्रपञ्चो न प्राकृतो..	(त.दी.नि.प्र.१।२३)	२
अवतारदशायान्तूद्धनी रूपदर्शनात्..	(यमुना.अ.बोधि.२२)	११०
अहमात्मात्मनां धात प्रेष्ठ सन्..	(भाग.पुरा.३।९।४२)	६५,८३
आचार्यदेवो भव..	(तैत्ति.उप.१।११।२)	९७
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान न..	(तैत्ति.उप.२।४)	५७
आनन्द आत्मा..	(तैत्ति.उप.२।५)	८५
आनन्दो ब्रह्मेति..	(तैत्ति.उप.३।६)	८८
आविर्भावतिरोभावैर्मोहनं..	(त.दी.नि.१।७२)	७६
आसीज् ज्ञानमथो ह्यर्थं..	(भाग.पुरा.११।२४।२-४)	२४
इन्द्रो मायाभि..	(बृह.उप.२।५।१९)	१०१
एकः कथम् अनेकधा..	(त.दी.नि.१।४०- ७९)	१
एकएवाद्वितीयोऽभूद्..	(भाग.पुरा.११।९।१७,१८)	२४
एकस्यैवाद्वितीयस्य ब्रह्मणो..	(भाग.पुरा.१०।१८।५)	८२

एतावदेव जिज्ञास्य...	(सुबो.२।९।३५)	११२
ऐतदात्म्यमिदं सर्वं..	(छान्दो.उप.६।८।७)	१०१
(क - ज्ञ)		
कतरो मार्ग श्रेष्ठो वै..	(दृ.८४ वै.वा.३०)	६१
कथमसत सज्जायेत..	(छान्दो.उप.६।२।२)	२२
कर्मादिमार्गाः वेदोक्ताः फल..	(सुबो.३।१।१)	५६
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं..	(भाग.पुरा.१०।२६।१५)	८६
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतु प्रकृति..	(भग.गीता १३।२०-२३)	५१
काव्यवद् रूपकोक्तौ हि..	(सुबो.१।१।३)	४९
क्षरं प्रधानम् अमृताक्षरं हरः..	(श्वेता.उप.१।१० - १२)	४५
चतुष्पद ब्रह्मपादारनित्यास्तु..	(बृह.उप.४।५-८)	८४
जिज्ञास्यं परमं तत्त्वं यत्..	(द्रष्ट.सुबो.२।९।३५)	२९
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमद..	(भाग.पुरा.१।८।२६)	१०९
जीवा स्वभावतो दुष्टाः..	(बा.बो.१६)	७०
ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्यु..	(भाग.पुरा.११।१९।१३)	७१
ज्ञानिनामपि वाक्येन न ..	(स.नि.२०)	५५
(त - न)		
तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं..	(त.दी.नि.२।२२८)	१०९
तदुक्तमपि दुर्बोधं सुबोधे..	(सर्वो.स्तो.४)	९७
तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि..	(मुण्ड.उप.१।२।१)	४६
तद्धेदं तर्हि अव्याकृतम् ..	(बृह.उप.१।४।७)	२३
तत् सृष्ट्वानुविशत् सर्वम्..	(तैत्ति.उप.२।६)	४५
तन्त्वौपनिषदं पुरुषं..	(बृह.उप.३।९।२६)	४९
तपस्तप्त्वाऽसृजत् सर्वम् इदं..	(तैत्ति.उप.२।६)	१००
तमेव विदित्वा अतिमृत्युम्..	(श्वेता.उप.६।१५-२०)	४७
तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु..	(भाग.पुरा.३।१९।२३)	६९
त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म	(बृह.उप.१।६।१-३)	२५
त्वद्भक्तानाम् आत्मवतां..	(भाग.पुरा.५।२४।२१)	५५

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण ..	(भाग.पुरा.१०।४०।८)	८३
द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तामूर्ते ..	(बृह.उप.२।३।१)	८४
धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थो ..	(भाग.पुरा.१।२।९-११)	११२
न एनेन किञ्चन अनावृतं..	(बृह.उप.२।५।१८-१९)	१३
न तस्य कश्चित् पतिः..	(श्वेता.उप.६।९)	४७
नमो भगवते तस्मै ..	(त.दी.नि.१।१)	१०
न यस्य कश्चातितिर्तति ..	(द्र.भाग.पुरा.८।५।३०)	६७
न वा रे सर्वस्य कामाय ..	(बृह.उप.२।४।५)	८८
नहि सर्वस्य कामाय सर्वं ..	(बृह.उप.४।५।६)	८३
नाभ्या आसीद् अन्तरिक्षं ..	(ऋक्.संहि.१०।९०।१७)	८८
नारायणपराः सर्वे ..	(भाग.पुरा.६।१७।२८-३१)	५६
नाहं प्रकाश सर्वस्य योगमाया ..	(भग.गीता ७।२५)	७६
नासतो विद्यते भावो..	(भग.गीता २।१६)	२२
निष्ठाभावे फलं तस्मान् ..	(त.दी.नि.१।१८)	६२
नैव इह किञ्चन अग्रे ..	(बृह.उप.१।२।१-५)	४३

(प - म)

पादोस्य विश्वा भूतानि ..	(ऋक्संहि.१०।९०।३)	८४
पुरश्चक्रे तु द्विपदः पुरश्चक्रे ..	(बृह.उप.२।५।१८)	४६,६९
पुरुषएवेदं सर्व यद् भूतं यच्च ..	(पुरु.सू.१-२)	५१
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धचनादी ..	(भग.गीता १३।१९)	५१
प्रकृतिं विद्धि मे परां ..	(भग.गीता ७।५)	५१
प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधति..	(ब्र.सू.३।२।२२)	३
प्रजापतिः अकामयत प्रजायेय ..	(तैत्ति.ब्रा.२।२।४।१-३)	५०
प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थ ..	(पु.प्र.म.२५-२६)	६६
प्रिया सर्वेऽत्रात्मनोहि ..	(बृह.उप.२।४।५)	६५
बलज्ञानक्रियाश्च ताः ..	(द्रष्ट.श्वेता.उप.६।८)	१०१
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् ..	(भाग.पुरा.१०।८४।२)	४२
ब्रह्म अयं वाचः परमे ..	(ऋक्.संहि.१।२२।१६४।३५)	४८

ब्रह्म ते ब्रवाणि ..	(कठोप.१।२।२०-२१)	८८
ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये ..	(भाग.पुरा.१०।८४।१)	४१
ब्रह्मरूपं जगज्ज्ञेयं ब्रह्मातो ..	(सुबो.२।९।३५)	८८
ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न ..	(पत्रा.३)	४२
ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् ..	(त.दी.नि.१।५०-५१)	५५,७३
भक्ति परेशानुभवो विरक्ति ..	(भाग.पुरा.११।२।४२)	७८
भक्त्या मामभिजानाति ..	(भग.गीता १८।५५)	७२
भक्त्यात्वनन्यया शक्यमहमेवं ..	(भग.गीता ११।५४)	७२
भेदः पारमार्थिकः इति..	(सुबो.३।३२।३७)	२०
भूमिरापोनलो वायु खं मनो ..	(भग.गीता ७।४)	३३
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः ..	(भग.गीता ९।१०)	५१
मयि ते तेषु चाप्यहं..	(भग.गीता ९।२९)	७५
मल्लानामशनी..	(भाग.१०।४०।१७)	८६
मामेव ये प्रपद्यन्ते माया ..	(भग.गीता ७।१४)	७६
माया च अविद्या..	(नृसिंहो.उप.९।३)	१३
मूलेच्छातः फलं लोके ..	(पु.प्र.म.१०-१७)	५५
(य - व)		
यस्यामतं तस्य मतं ..	(केनोप.२।३)	२५
यतो वा जायते ..	(तैत्ति.उप.३।१)	१००
यत्करोषि यदश्नासि ..	(भग.गीता ९।२७-२८)	७३
यदि श्रीगोकुलाधीश ..	(चतु.श्लो.३)	९७
यदि ब्रह्म तावन्मात्रं..	(अणुभा.२।१।१२)	२०
यद्वै तद् न विजानाति ..	(बृह.उप.४।३।३०)	२५
येन प्रजानामुत आत्मकर्म..	(भाग.पुरा.३।५।९)	३०
'येन' इति प्रजानामपि प्रत्येकं	(सुबो.३।५।९)	३०
यो अविद्यया अनुपहतोऽपि ..	(भाग.पुरा.३।९।२०-२१)	५०
योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्य ..	(भाग.पुरा.१०।८४।५०)	४४
यो देवानां नामधा..	(ऋक्संहि.१०।८२।३)	१३

यो देवानां प्रभवश्च..	(श्वेता.उप.३।४)	१३
यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जन..	(भाग.पुरा.१०।८४।८)	४३
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं..	(श्वेता.उप.६।१८)	४६
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं..	(भग.गीता ६।३०-३१)	७३
रजोगुणो महापाप्मा..	(भग.गीता ३।३७)	९६
रसो वै स यद् वै तत्..	(तैत्ति.उप.२।७)	७४,८५
रूपप्रपञ्चवैचित्र्यं जीवा..	(त.दी.नि.प्रका.२।१८)	७६
वाचारम्भणं 'विकारो'..	(छान्दो.उप.६।१।४)	२५
'विपर्यासः' संस्काराप्राबल्यात्..	(सुबो.३।२६।३०)	३४
विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे..	(श्रीभाग.माहा.१।७१)	७७
विश्वासो मनसि दृढः..	(द्र.८४ वै.वा.३०)	६१
वेदा यथा मूर्तिधरा..	(भाग.पुरा.१।१९।२३)	४९
(श - ह)		
शब्दइति चेद् न अतः..	(अणु.भा.१।३।२८)	५०
शश्वत् स्वरूपमहसैव निपीत..	(भाग.पुरा.३।९।१४)	८२
शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते	(भाग.पुरा.११।२१।३-४३)	३८
स भूमिं विश्वतो वृत्त्वा..	(ऋक्.संहि.१०।९०।२)	७५
स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्वः..	(भाग.पुरा.२।१।३९)	७५
सत्यं ज्ञानमनन्तं..	(तैत्ति.उप.२।१)	२३,९३
सत्त्वंरजस्तम..	(द्रष्ट.सुबो.२।५।१९)	२९
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे..	(भग.गीता ९।२९)	६६,७१
सर्वं करोति भगवान्..	(सुबो.३।३२।२२)	६५
सर्वगुह्यतमं भूयः..	(भग.गीता १८।६४)	७८
सर्वाकारस्वरूपेण भविष्यामि	(त.दी.नि.२।१४१-१४६)	२९
सर्वं पुरुषएवेदं भूतं च..	(ऋक्.संहि.१०।९०।२)	४५
सर्वाणि रूपाणि विचित्य..	(तैत्ति.आर.३।१२।७)	९९
सर्वे वेदाः यत्पदम् आमनन्ति..	(कठोप.२।१५)	४८
सर्वे वेदाः यत्र एकं भवन्ति..	(तैत्ति.आर.३।११।१)	४८

सहैव सन्तं न विजानन्ति..	(तैत्ति.आर.३।११।५)	७५
सायुज्येतु रसाधिक्यं..	(त.दी.नि.३।५।१५५)	२०
सोऽकामयद् बहुस्यां..	(तैत्ति.२।६)	९६
स्तुतिः प्रशंसा निन्दा..	(बृह.देव.१।३५-४०)	४७
स्तुवन्तु 'वेद सर्वोऽयम्..	(बृह.देव.१।९-१०)	४९
स्वसृष्टमिदमापीय शयानं..	(भाग.पुरा.१०।८४।१२-१३)	४३
हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं..	(सं.नि.१९)	६६